Chapters-3

तृतीय अध्याय

महाभारत तथा श्रीमद्भागवत से प्रेरित कृतियाँ

- जयद्रथ-वध
- सैरन्ध्री
- वन-वैभव
- वक-संहार
- द्वापर
- नहुष
- जयभारत
- हिडिम्बा
- युद्ध

अंतरंग विवेचन - कथावस्तु, वस्तुगत आधार, मौलिकता और आधुनिकता

अभिव्यक्ति पक्ष - भाषा (मुहावरों, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ), संवाद-योजना, रस योजना, बिम्ब विधान, अलंकार विधान, छंद विधान.

 116

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने महाभारतीय आख्यानों एवं कथा प्रसंगों को लेकर " जयद्रथ-वध ", " सैरन्ध्री ", " वन- वैभव ", " वक संहार ", " द्वापर ", " नहुष " , " जयभारत ", " हिडिम्बा ", " युद्ध " आदि अनेक रचनाओं का सृजन किया है. इस अध्याय में हम इन रचनाओं का ही अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं.

जयद्रथ-वध

" जयद्रथ-वध " महाभारत की प्रसिद्ध घटना जयद्रथ वध को लेकर लिखा गया खण्डकाव्य है. धर्म के आधार पर कौरवों और पाण्डवों के बीच लड़ाई होती है. अभिमन्यु द्रोणाचार्य कृत चक्रव्यूह को भेदता है. तथा कृपाचार्य, कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि से लड़ता है. अंतमें वह निःशस्त्र हो जाता है तब जयद्रथ अभिमन्यु का वध करता है. अर्जुन अपने पुत्र के वैर का बदला लेना चाहता है. वह प्रतिज्ञा करता है कि -

> " सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ-वध करूँ,
> तो शपथ करता हूँ, स्वयं मैं ही अनल में जल मरूँ ।। " [1]

अर्जुन दिन रहते ही जयद्रथ को मारकर अपना प्रण पूर्ण करता है. इस प्रकार अर्जुन अपने पुत्र का प्रतिशोध लेता है.

सैरन्ध्री

बारह साल का वनवास भोगकर जब पाण्डव विराट राजा के यहाँ अज्ञातवास का जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब कीचक दासी सैरन्ध्री को देखता है और उसे देखते ही उस पर मोहित हो जाता है. वह उसको अपनाना चाहता है. लेकिन सैरन्ध्री पातिव्रत धर्म का पालन करती है. सैरन्ध्री ने एक चित्र बनाया

---

1. जयद्रथ-वध - पृ. 39.

था. उसको लेकर सुदेष्णा सैरन्ध्री को कीचक के पास भेजती है.उसी समय कीचक सैरन्ध्री का हाथ पकड़ता है. वह हाथ छुड़ाने के लिए एक झटका मारती है जिससे वह कामांध गिर पड़ता है. कीचक सैरन्ध्री को भरी सभा में लात मारकर अपने अपमान का बदला लेता है. अंतमें, भीम कीचक का वध करता है. इस प्रकार भीम द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेता है.

वन- वैभव
=======

" वन-वैभव " पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नामक दो अंशों में विभाजित कृति है. इस काव्य के पूर्वार्द्ध में पाण्डवों के वनवासी जीवन का और उत्तरार्द्ध में कौरवों के वन-विहार का वर्णन किया गया है. जब पाण्डव वन में पवित्र जीवन जी रहे थे तब दुर्योधन मृगया के लिए वन में आता है. उसके आगमन का समाचार सुनते ही पाण्डवों के मन में अनेक प्रकार के तर्क- वितर्क उठते हैं. कुरुकुल का समुदाय गंधर्वों के जलाशय में क्रीड़ा करने लगता है. जिससे उन दोनों के बीच युद्ध होता है. गंधर्व कौरवों को विमान से बाँध देते हैं. तब कौरव पक्ष का सचिव युधिष्ठिर के पास जाता है और उनकी सहायता करने के लिए कहता है. युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन चित्ररथ से लड़ता है. इस युद्ध में अर्जुन को विजय मिलती है. जिससे कौरवपक्ष बन्धनमुक्त हो जाता है.

वक- संहार
========

" वक- संहार " महाभारत की कथा पर आधारित खण्डकाव्य है. कुन्ती अपने पुत्रों के साथ एक चक्रानगर में जाती हैं. वहाँ वे ब्राह्मण के अतिथि बनकर रहते हैं. उस नगर में वक नामक राक्षस रहता था. उसके लिए प्रत्येक परिवार के एक व्यक्ति को भक्ष्य बनना पड़ता था. एक दिन ब्राह्मण कुटुम्ब की बारी आई. तब ब्राह्मण, ब्राह्मणी, पुत्री और पुत्र में से कौन जाय ? यह प्रश्न उठता है. कुन्ती इस करुण संवाद को सुनकर व्यथित हो जाती है. और वह भीम को राक्षस के यहाँ भेजती है. भीम वक का वध

करता है. जिससे उस नगर की प्रजा का दुःख मिट जाता है.

द्वापर

यह काव्य रचना सोलह खण्डों में लिखी गई है. इस काव्य के प्रधान चरित-नायक श्रीकृष्ण है. इस काव्य में श्रीकृष्ण के विविध स्वरुपों का वर्णन किया गया है. इसमें कृष्ण की सोलह कलाओं के द्वारा सभी पात्रों का भाव अभिव्यक्त हुआ है. गोपी, राधा, कुब्जा, विधृता, बलराम, ग्वाल-बाल, नारद, यशोदा, बलराम, नारद, कंस, अक्रूर, नन्द, कुब्जा, सुदामा आदि पात्रों के माध्यम से कृष्ण के जीवन का वर्णन किया गया है. " द्वापर " में कवि की नारी- भावना अभिव्यक्त हुई है.

नहुष

यह खण्ड काव्य सात कथांशों में लिखा गया है. इस काव्य में इन्द्र पद को प्राप्त करने के बाद भी मानवीय दुर्बलताओं के कारण नहुष का कैसे पतन होता है, इसका वर्णन किया गया है. राजा नहुष इन्द्र पद प्राप्त करने के बाद शची को अपनी पत्नी बनाना चाहता है. अंतमें, ऋषि-मुनि लोग नहुष की शिविका उठाकर जाते हैं. लेकिन नहुष का पैर एक ऋषि को लगता है. जिसके फलस्वरुप, नहुष को शची नहीं मिली लेकिन ऋषि का शाप मिला. जिसको वह स्वीकार करता है.

" नहुष " के द्वारा कवि मानव को चेतावनी देते हैं कि सत्कर्म से इन्द्र पद भी मिलता है लेकिन कुकर्म करने से मनुष्य का अधः पतन होता है.

जयभारत

" जयभारत " प्रबन्ध काव्य है. जिसमें " नहुष " से लेकर " स्वर्गारोहण " तक की सभी घटनाओं का वर्णन किया गया है. काशीराज के अम्बालिका और अम्बिका नामक दो पुत्रियाँ थीं. अम्बिका का पुत्र धृतराष्ट्र था और अम्बालिका

का पुत्र पाण्डु था. पाण्डु की कुन्ती और माद्री नामक दो पत्नियाँ थीं. युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के पुत्र थे और सहदेव और नकुल माद्री के पुत्र थे. धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी को द्वैपायन मुनि का आशीर्वाद था. जिससे वह सौ पुत्रों और एक पुत्री की माता बनती है. बादमें, पाण्डु के पुत्र पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव के नाम से प्रसिद्ध हुए. बाल्यावस्था से ही उनके बीच द्वेष-भाव और ईर्ष्या की भावना पनप उठी. दुर्योधन पाण्डवों को मार डालने के लिए लाक्षागृह बनवाता है किंतु वे लाक्षागृह से वन को न चले जाते हैं. तत्पश्चात वे पांचालराज्य में जाते हैं जहाँ द्रौपदी अर्जुन को वरती है. युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते हैं, वहाँ दुर्योधन को उनके महल में थल में जल का आभास होता है. दास, दासी भी दुर्योधन का उपहास करते हैं. इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए दुर्योधन युधिष्ठिर से द्युत खेलता है. जिसमें युधिष्ठिर हार जाते हैं. तब पाण्डवों को बारहसाल का वनवास और एक वर्ष के लिए अज्ञातवास में रहना पड़ता है. लौटने पर दुर्योधन उनको पाँच गाँव भी देना नहीं चाहता है. तब दोनों पक्षों में युद्ध होता है. कृष्ण अर्जुन के सारथी थे कृष्ण की अष्टादश अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के पक्ष से लड़ती थी. इस युद्ध में पांडवों की विजय हुई और दुर्योधन की हार होती है. अंतमें, विजयी पांडव स्वर्ग में चले जाते हैं.

हिडिम्बा

पाँचों पाण्डव और माता कुन्ती लाक्षागृह से निकल कर वन में जाते हैं. तब हिडिम्बा उस वन में आती है. जिस वन में भीम प्रहरी था. वह भीम को देखती है और उसकी ओर आकर्षित हो जाती है. भीम राक्षस हिडिम्बा का वध करता है और अंत में भीम और हिडिम्बा विवाह करते हैं. माता कुन्ती उसके चारित्र्य को देखकर उस पर प्रसन्न हो जाती है.

युद्ध

" युद्ध " में कौरव-पाण्डव के बीच के युद्ध का वर्णन किया गया है. इस

युद्ध में एक ओर निःशस्त्र श्रीकृष्ण और पाण्डवों की सेना थी जबकि दूसरी ओर दुर्योधन और कृष्ण की अष्टादश अक्षौहिणी सेना थी. अंतमें, इस युद्ध में पांडवों को विजय मिलती है और दुर्योधन हार जाता है.

वस्तुगत आधार

जयद्रथ- वध

" जयद्रथ-वध " महाभारत पर आधारित रचना है. " महाभारत " में वर्णित जयद्रथ- वध प्रसंग इस काव्य का विषय है.

सैरन्ध्री

पंचमवेद " महाभारत " में वर्णित अज्ञातवास के समय की कीचक और सैरन्ध्री की प्रसिद्ध घटना के आधार पर यह रचना लिखी गयी है.

वन-वैभव

" वन-वैभव " महाभारत के वनवैभव प्रसंग पर आधारित रचना है.

वक-संहार

" वक-संहार " महाभारत के प्रसिद्ध वक संहार प्रसंग को लेकर लिखा गया काव्य है.

द्वापर

कवि ने " द्वापर " के लिए श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के तेईसवें अध्याय से आधार लिया है.

नहुष

गुप्तजी अपने बाल्यमित्र बन्धु मुन्शी अजमेरी जी की अकस्मात मृत्यु हो जाने से अत्यधिक व्यथित हो जाते हैं. तब वे मन की शांति के लिए " महाभारत " और " रामायण " का एक एक पारायण करते हैं. उसी समय कवि को ऐसी

अनेक कथायें मिलती हैं कि जिन पर कुछ लिखा जाय. लेकिन उस समय किसी कार्य का भार उठाने के लिए कवि अशक्तिमान था. फिरभी उद्योगपर्व में वर्णित नहुष उपाख्यान को पढ़कर कवि काव्य रचना के लिए सोचने लगते हैं. उस समय ही कवि यूरोप के महाकवि मिल्टन के " पैराडाइज लोस्ट " की स्वर्ग से पतन की बात सुनते हैं. लेकिन कवि " नहुष " के लिए मिल्टन के काव्य का आधार न लेकर " महाभारत " में वर्णित कथा का आधार लेते हैं.

" रामायण " में भी यह आख्यान मिलता है. प्रसिद्ध बौद्धकवि अश्वघोष ने भी अपने " बुद्ध चरित " में इसकी चर्चा की है--

भुक्त्वापि राज्यं दिवि देवतानाम्
शत क्रतौ वृत्रभयात्प्रनष्टे
दर्पान्महर्षीनपि वाहयित्वा
कामेष्वतृप्तौ नहुषः पपात । " [1]

" वस्तुतः नहुष का नाम वैदिक काल से सुना जाता है और मनु के समय से उसका दृष्टान्त दिया जाता है. " [2]

गुप्तजी इस कथा को नयेरुप में " इन्द्राणी " नाम से लिखना आरंभ करते हैं. लेकिन बीच में इसका क्रम टूट जाता है. फलस्वरुप अंतमें वही रचना " नहुष " नाम से प्रकाशित होती है.

जयभारत

गुप्तजी ने " जय भारत " के कथानक के लिए भी " महाभारत " का ही सहारा लिया है. सन 1907 में कवि ने " उत्तरा और अभिमन्यु " की रचना की. जो सन 1908 में " सरस्वती " में प्रकाशित हुई-

---

1. नहुष- निवेदन - पृ. 4.
2. वही- पृ. 4.

" अभिमन्यु का चरित अनुकरणीय प्रायः है सभी ।
जो हो सका तो युद्ध भी इसका सुनाऊँगा कभी ।। " [1]

सन् 1942 तक गुप्तजी इन पंक्तियों को सार्थक कर देते हैं.

इस रचना के लिए कवि ने विभिन्न समयों में लिखे गये आख्यानों का संग्रह किया है साथ ही इसमें गुप्तजी ने कतिपय पूर्ववर्ती रचनाओं का संकलन तथा कतिपय प्रसंगों पर नवीन रचनाएँ प्रस्तुत की हैं. अनेक रचनाओं को संक्षिप्त कर दूसरी बार भी लिखा है. तथा उन्होंने अनेक प्रसंगों को अपनी पूर्वलिखित रचनाओं के आधार पर नया रूप भी दिया है.

हिडिम्बा

सन् 1950 में लिखित " हिडिम्बा " महाभारत के आधार पर लिखा गया खण्डकाव्य है. इस खण्डकाव्य की कथा " आदिपर्व " के पैंतालीसवें और छियालीसवें अध्याय से ली गई है.

युद्ध

यह कृति गुप्तजी की कोई स्वतंत्र रचना न होकर जयभारत का ही एक अंश है जिसे पृथक से पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है. इसमें महाभारत के प्रसिद्ध कौरवों-पाण्डवों के युद्ध का वर्णन किया गया है.

मौलिकता और आधुनिकता

जयद्रथ-वध

" जयद्रथ-वध " महाभारत पर आधारित रचना है. प्राचीन कथानक को लेकर कवि ने अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से नवीन उद्भावनाएँ की हैं. " काव्य की

---

1. सरस्वती, जनवरी 1908, पृ. 44 उत्तरा और अभिमन्यु मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक - पृ. 294 से उद्धृत.

दृष्टि से " जयद्रथ-वध " गुप्तजी के कृतित्व के प्रारंभिक काल की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है. सुभद्रा और उत्तरा के विलाप में करुण की स्त्रोतस्विनी प्रवहमान है, चित्रकणकला और अप्रस्तुत विधान प्रारंभिक कृतियों में सबसे अच्छा है, भाषा में प्रवाह और ओज है. " [1] इस प्रकार गुप्तजी की प्रारम्भिक रचनाओं में " भारत- भारती " को छोड़कर इसकी प्रसिद्धि सर्वाधिक रही.

सैरन्ध्री

इस काव्य में वस्तु की नहीं लेकिन शैली की मौलिकता है. सैरन्ध्री की प्रतिपादन शैली सर्वथा नवीन है अतएव अंत तक रोचकता बनी रहती है. विशेषतः सजीव कथोपकथन ने इसे नूतन जीवन प्रदान किया है.

वन-वैभव

" इसका शील मौलिक नहीं है पर शैली सर्वथा नवीन है. नूतनता में संवाद विशेषतः सहायक सिद्ध हुए हैं. इसकी दूसरी विशेषता है वैषम्य चित्रण-यहाँ पर वैषम्य है पाण्डवों की पूर्व और वर्तमान स्थिति में तथा पाण्डवों और कौरवों की दशा में . " [2]

पाण्डव राजपुत्र हैं फिरभी उनके पास दास या दासी कुछ भी नहीं है.

" पास वे दास न दासी हैं ।
न भोगी हैं, न विलासी हैं ।
उदासी हैं, सन्यासी हैं. " [3]

द्रौपदी रानी हैं फिरभी वह वन में साधारण नारी-सा काम करती है. वह पानी भी भरती है फिरभी वही गौरव है जो पहले था--

---

1. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकान्त, पृ. 12.
2. वही- पृ. 28
3. वन- वैभव- पृ.7.

124

" हाय ! वह कृष्णा कल्याणी,
शेष है बस जिसमें वाणी,
कि जो थी कभी महारानी,
स्वयं अब भरती है पानी । " [1]

अर्थात् कवि ने पौराणिक काव्य में भी आधुनिकता को प्रधानता दी है. " वन-वैभव " की द्रौपदी में भारतीय स्त्रियों की विशेषता दिखाई पड़ती है. द्रौपदी पति के साथ वन में रहती है और पति सेवा का कार्य करती है.

" सदा पति-सेवा करती है,
अतिथियों का श्रम हरती है ।
भव्य भावों को भरती है,
धर्म अपना आचरती है. " [2]

इस प्रकार " वन-वैभव " में गुप्तजी की मंजती हुई कला का आभास निस्संदेह वर्तमान है- किंतु इसका सम्पूर्ण महत्व अवलम्बित है युधिष्ठिर के भव्य चरित्र पर. युधिष्ठिर परंपरा से धीर-प्रशांत चरित्र के रुप में प्रतिष्ठित हैं- पर गुप्तजी ने उन्हें और भी उदात्त रुप में प्रस्तुत किया है. " [3]

वक- संहार

इस काव्य का प्रतिपाद्य " महाभारत " की चिरप्रसिद्ध कथा है. यत्रतत्र उसमें कवि के आदर्शवाद, रुचि एवं विचारों के प्रभाव से कुछ परिवर्तन परिवर्धन भी हुआ है, उदाहरणतः " महाभारत " की ब्राह्मणी स्वयं मरने का प्रस्ताव

---

1. वन- वैभव- पृ. 8.
2. वही- पृ. 8.
3. मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता - उमाकान्त पृ. 28.

125

करती हुई कहती है ---

" उत्सृज्यापि हि मामार्य प्राप्स्यस्यन्यामपि स्त्रियम् ।
ततः प्रतिष्ठितो धर्मो भविष्यति पुनस्तव ।।
न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नी कृतां नृणाम् । " [1]

पर गुप्तजी की ब्राह्मणी कहती है--

" मैं एक तुममें रत यथा,
तुम एकपत्नीव्रत तथा ।
मैं जानती हूँ, तुम कहो न कहो इसे । " [2]

" महाभारत " में कुन्ती के रुदनरत ब्राह्मण- परिवार के पास जाने के पहले भीम प्रतिज्ञा कर लेते हैं-

" ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् ।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ।।"

" महाभारत " की कुन्ती भीम को भेजने का प्रस्ताव इस प्रकार करती है--

" न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्र विनाशने ।
वीर्यवान्मंत्र सिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ।। " [3]

" तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव ।
प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम् ।।
नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद्विनिश्चितम्
बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया । " [4]

---

1. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 157, श्लोक- 35-36.
2. वक-संहार- पृ. 14.
3. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 156, श्लोक- 16.
4. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 161, श्लोक- 19-20.

परन्तु वक संहार " की कुन्ती का हृदय अपने पुत्र को भेजने के विचार से काँप उठता है. कवि उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हैं-

" बाहर अटल थी किन्तु भीतर हत हुई

× × × ×

भगवान, मैं ही किस तरह,

जाने उन्हें दूँ इस तरह

क्या मारने को ही उन्हें मैंने जना ? " [1]

× × ×

जो भी शिला- सी निश्चला,

अब रुँध गया उसका गला,

वह देर तक जल-मग्न-सी लेटी रही । " [2]

गुप्तजी के ऐतिहासिक और पौराणिक काव्यों पर गांधी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है. " वक-संहार " काव्य के एक पात्र में एक सत्याग्रही के समान कर्तव्यभावना दिखाई पड़ती है--

" सबको विपद में छोड़कर,

किस धर्म-धन को जोड़कर,

भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय ! मैं ?

× × ×

जो कर्म तत्प्रतिकूल है,

करना उसे फिर भूल है ।

मैं धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं । " [3]

" गांधीजी की आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि व्यापक विचारधारा का एक मात्र लक्ष्य " स्वराज्य " तथा

1. वक-संहार - पृ. 32-33.

2. वही- पृ. 34.

3. वही- पृ. 24.

" सर्वोदय " है. सभी प्रकार के भेदभावों से मुक्त जनता अपने देश का संचालन करती है. प्रजा ही अपने देश के सुचारु संचालन के लिए राजा को [नेता] निर्वाचित करती है. गुप्तजी एक आदर्श राज्य का चित्रण करते हैं " [1]

" राजा प्रजा का पात्र है,
वह लोक- प्रतिनिधि मात्र है ।
यदि वह प्रजा- पालक नहीं तो त्याज्य है ।
हम दूसरा राजा चुनें,
जो सब तरह अपनी सुने,
कारण, प्रजा का ही असल में राज्य है । " [2]

द्वापर

श्रीमद्भागवत पर आधृत इस रचना में अनेक स्थलों पर कवि ने मौलिक उद्भावनाएँ व्यंजित की है.

" द्वापर " में गोकुल के निवास से लेकर मथुरा जाने और वही रह जाने का वर्णन प्राचीन कथा के आधार पर मिलता है. लेकिन " विधृता " कवि की मौलिक उद्भावना है. " उसमें गोवर्द्धन- धारण और गोवर्द्धन- पूजा को साम्प्रदायिक भक्ति के परिवेष्टन से निकालकर वैष्णवीय और मानवीय करुणा के बौद्धिक आधार से संयुक्त कर दिया है. उसमें मानवीय उद्देश्य की पावनता भर दी है. " [3] जबकि प्राचीन कवियों ने उसे स्तुत्यात्मक रुप देकर भगवान की लीला के लिए निरुपित किया था.

देवकी का कारागृह वास और उसके बच्चों की हत्या की घटना परिपाटी प्राप्त है. पर गुप्तजी ने इस घटना में मातृत्व का निरुपण किया

---

1. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव - डा० अरविन्द जोशी- पृ. 267.
2. वक- संहार- पृ. 22.
3. गुप्तजी की कला, सत्येन्द्र, पृ. 168.

128

है. " द्वापर " के कवि ने कंस को एक भीरु व्यक्ति के रुप में चित्रित किया है और यह सब आधुनिक बौद्धिक धरातल पर किया गया है.

उद्धव गोपियों के पास ज्ञान संदेश लेकर जाता है. इस प्रसंग में प्राचीन कवियों ने ज्ञान से भक्ति को, निराकार से साकार को श्रेष्ठ माना है. जबकि गुप्तजी ने इसे न तो भक्ति का रुप दिया है न ही दार्शनिक. किन्तु उसका बौद्धिक धरातल पर ही चित्रण किया है.

इससे स्पष्ट है कि " विधृता " की नारी ने पुरुषों के अत्याचारों के प्रति अपना क्षोभ प्रकट किया है. कवि आदर्शवादी हैं. उन्होंने कुब्जा का चित्रण राधा की सौत के रुप में नहीं लेकिन अनन्य सेविका के रुप में किया है. कवि ने गोपियों का चित्रण राधा की सखियों के रुप में किया है.

गुप्तजी भी गांधीजी की भांति अहिंसा के अनुयायी है. वे " द्वापर " में कहते हैं-

" जीने देकर जियो, मारकर
क्या तुम नहीं मरोगे । " [1]

गांधीजी अहिंसा को आत्मा की शक्ति मानते हैं. हिंसा की भयानकता को देखकर ही वे अहिंसक रहे और उन्होंने अहिंसा का प्रचार भी किया.

गांधी विचारधारा में धर्म की एकता को महत्व दिया गया है. इस विचारधारा में धर्म का राष्ट्रीय महत्व है. गुप्तजी भी धर्म का स्वरुप इस प्रकार बताते हैं --

" मार्मिक धर्म समीर-धर्म है,
सभी साँस ले जिसमें,
मृदुता और प्रबलता दोनों
एक साथ हैं इसमें ।

---

1. द्वापर, पृ. 127.

किन्तु स्वयं तुम शुद्ध नहीं तो,
कोई धर्म तुम्हारा,
कितना ही प्रबुद्ध हो, कलुषित
है सारा का सारा । " [1]

" आत्मशुद्धि के लिए उपवास तो आवश्यक हैं ही, सत्याग्रही के लिए तो अन्य पांचव्रतों का पालन भी अनिवार्य है. ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद और अभय, ये पांचव्रत गांधी विचारधारा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. गुप्तजी के अनुसार व्रतों की आवश्यकता इस प्रकार है -" [2]

" साथ चलो, सबके हित बोलो, बनो संगठित,
साथ मनन कर, करो समान गुणों को अर्जित
व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर,
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वह,
ऋतंभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अंतर
तुम देवों के योग्य बनो ओ, मर्त्य से अमर । " [3]

गुप्तजी मानते है कि मनुष्य को इतना ही धन का संचय करना चाहिए, जितना उसके लिए आवश्यक हो. अर्थात् गुप्तजी भी गांधीजी की भांति त्याग को महत्व देते हुए " द्वापर " में कहते हैं -

" बाहर मैं जन- मान्य और धन
धान्य-पूर्ण घर मेरा,
पाया है, तब देने को भी
प्रस्तुत है कर मेरा ।

---

1. द्वापर, पृ. 128.
2. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, डा० अरविन्द जोशी, पृ. 196.
3. द्वापर, पृ. 119.

लहराता है गहरा गहरा
यह मानस-सर मेरा,
वही मराल बना है इसमें
जो इन्दीवर मेरा । " [1]

जो सत्याग्रही है वह अर्थ के संचय से दूर ही रहता है. इस वैभवशाली वसुधा पर धन का कोई अभाव नहीं है. परन्तु त्याग और तप का अभाव है. किन्तु जो त्यागी है उसे अपने त्याग पर कितना गर्व है -

" विभव-शालिनी इस वसुधा पर
क्या अभाव है धन का,
पाया परम्परागत मैंने
दुर्लभ- साधन मन का ।
मैं उस कुल का हूँ, विश्रुत है
त्याग और तप जिस का,
मुझको न हो, किन्तु तुझको भी
गर्व नहीं क्या इसका ?" [2]

गुप्तजी " द्वापर " में विश्व-प्रेम का संदेश इस प्रकार देते हैं--

" सच पूछो तो ऐसा अद्भुत
अपना यह मानव ही,
कभी देव बन जाता है जो
और कभी दानव ही
मैं कहता हूँ, यदि मनुष्य ही
बने मनुष्य हमारा
तो कट जाय देव- दैत्यों का
कलह- कलुष यह सारा । " [3]

---

1. द्वापर, पृ. 28.
2. वही, पृ. 210.
3. वही, पृ. 103.

" द्वापर " में अस्तित्वहीन कही जानेवाली नारी ने भी आधुनिक युग के अनुरूप पुरुषों के अत्याचारों के प्रति अपनी आवाज उठाई है.

देश के युवकों को कवि बार बार पुकार कर कहता है कि नारी को मुक्त करो और उसे समान अधिकार दो. वह नर से कहीं उच्च और देवी के तुल्य है.

बापू स्त्रियों में फैली अंधपरम्परा के बहुत ही विरोधी थे. वे यह कभी नहीं चाहते थे कि नारी अन्याय के सामने झुक जाय. इसी भावना को गुप्तजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है --

" जाती हूँ, जाती हूँ अब मैं,
और नहीं रुक सकती,
इस अन्याय समक्ष मरूँ मैं,
कभी नहीं झुक सकती । " [1]

नहुष
===

" नहुष " की कथा के लिए कवि ने पौराणिक आख्यान का सहारा लिया है. " महाभारत " के उद्योगपर्व में मद्रराज शल्य युधिष्ठिर को दुःखी इन्द्र इन्द्राणी की बात कहते हैं. गुप्तजी का कथानक नवीनता और मौलिकता लिये हुए है.

" {महाभारत में} इसका अवतरण कष्ट सहिष्णुता के उपदेशार्थ हुआ था किन्तु यहाँ इसके द्वारा मानव-स्तवन किया गया है. वस्तुतः गुप्तजी ने उपाख्यान की आत्मा को बदल दिया है. गुप्तजी को नहुष के शापित होने पर भी उसकी प्रगति का, उन्नति का पूर्ण निश्चय है. " [2]

---

1. द्वापर- पृ. 42.
2. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकान्त, पृ. 40.

महाभारतकार नहुष को कलुषात्मा और पापात्मा कहते हैं-

" सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे
धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत । " [1]

जबकि गुप्तजी इसके लिए मनोविज्ञान की सहायता लेते हैं. गुप्तजी के नहुष के अनुसार स्वर्ग की प्रजा के लिए किसी राजा की आवश्यकता नहीं है.

" वस्तुतः यहाँ की प्रजा इतनी विशिष्ट है,
इसके हितार्थ कोई राजा नहीं इष्ट है । " [2]

महाभारत में शची की प्राप्ति के अपने प्रस्ताव की पुष्टि में नहुष इन्द्र के दूषित कर्मों का उल्लेख करते हैं-

" अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ।
अहल्या घर्षितापूर्वं मृषिपत्नी यशस्विनी । " [3]

तब आधुनिक काव्य का नहुष कहता है-

" इन्द्राणी रहेगी वही, इन्द्र जो हो सो सही । " [4]

" महाभारत " में मुनियों का निर्णय शची की ओर रहता है जबकि इस काव्य में नहुष के पक्ष में निर्णय दिया जाता है तब शची कहती है -

" अच्छा तो उठाके वही कन्धों पर शिविका,
लावें उस नर को, बनाके वर दिवि का । " [5]

---

1. महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय- 11, श्लोक 10-11.
2. नहुष, पृ. 32.
3. महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय- 12, श्लोक- 5-6.
4. नहुष, पृ. 42.
5. वही, पृ. 59.

इससे यही स्पष्ट होता है कि बौद्धिक ऊहापोह को दूर करने के लिए कवि ने मौलिकता को प्रधानता दी है. इस प्रकार गुप्तजी ने चिरपरिचित आख्यान को रोचकता, स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता के समावेश से अभूतपूर्व औज्ज्वल्य प्रदान किया है.

" महाभारत " और गुप्तजी रचित " नहुष " के संदेश में युगीन प्रभाव के कारण भी अंतर रहा है. कवि लिखते हैं- " व्यासदेव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया है कि मनुष्य बार बार ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएँ बार बार उसे नीचे ले आती है. मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी. इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर -2 उठ खड़ा होना होगा. तबतक, जब तक वह पूर्णतः प्राप्त न कर ले. " [1]

राजा नहुष के द्वारा मनुष्य को यह चेतावनी दी गई है कि यदि अच्छे कर्मों से वह देवता बन सकता है तो बुरे कर्मों से उसका पतन भी हो सकता है.

" नहुष " में कवि ने अपने महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है. स्वर्गलोक के भोग, विलासपूर्ण जीवन में भी शची की पतिनिष्ठा को महत्व दिया गया है.

जय भारत

कवि ने इस रचना के लिए " महाभारत " का आधार लिया है. डा० उमाकान्त ने लिखा है कि गुप्तजी के हृदय में प्राचीनता के प्रति महती श्रद्धा है तथापि उनका महाकाव्य मौलिक है.

" महाभारत " में नहुष-चरित उद्योगपर्व में आता है जबकि " जय भारत " में उसकी प्रथम ही नियोजना की गई है. द्रौपदी चीरहरण " महाभारत " का महत्वपूर्ण प्रसंग है. सभा भवन में पांच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के वस्त्र

---

1. नहुष, निवेदन- पृ. 4.

खिंचने का प्रयास किया जाता है और वह कर्म भी गुरुजनों के समक्ष होता है. द्रुपदसुता भगवत् स्मरण करती है जिससे उसका चीर बढ़ता जाता है. धर्म- प्रताप और कृष्ण-कृपा से वह चीर समाप्त नहीं होता. गुप्तजी इस प्रसंग की भीषणता को दूर करने के लिए उस सभा से गुरुजनों, भीष्म, द्रोण और विदुर को दूर रखते हैं. द्रौपदी भगवान को पुकारती है लेकिन यहाँ धर्म कपड़ा बनकर नहीं बढ़ता लेकिन उसके पाप-कृत्य के भीषण परिणाम को उपस्थित कर उसको शक्तिहीन कर देती है. वह कहती है -

" रे नर आगे नरक-वह्नि में तू निज मुख की लाली देख ।
पीछे, खड़ी पंचमुख शव पर नग्न कराला काली देख ।। " [1]

जिसका परिणाम यह हुआ --

" सहसा दुःशासन ने देखा अंधकार- सा चारों ओर,
जान पड़ा अम्बर-सा वह पट, जिसका कोई ओर न छोर ।
आकर अकस्मात अति भय-सा उसके भीतर पैठ गया ।
कर जड़ हुए और पद काँपे, गिरता-सा वह बैठ गया ।। " [2]

" कितना मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक वर्णन है यह. द्रौपदी के आक्रोश पूर्ण गर्जन के भयाक्रान्त करके दुःशासन में हीनता का संचार कर दिया. फलतः उसका उत्साह भंग हो गया और वह काँप कर बैठ गया. इस प्रसंग का यह बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक निरुपण स्तुत्य % है. " [3]

कवि उस सभा में गांधारी को उपस्थित करते हैं जिससे उनकी बात और भी विश्वसनीय बनती है -

---

1. जय भारत, पृ. 148.
2. वही, पृ. 148.
3. मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य- दानबहादुर पाठक, पृ. 139.

" चौंक संभलकर पाप-सभा ने पुनः सभ्यता-सी पाई ! [1]

दूसरा प्रसंग है कृष्ण- दौत्य.

कृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि संदेश लेकर जाते हैं- किन्तु दुर्योधन उनकी बात न मानकर उन्हें बंदी बनाता है. तब श्रीकृष्ण का विश्वरूप प्रकट होता है. उनके शरीर से ज्योतिपुंज और अँगूठे बराबर देवता निकलते हैं. महाभारतकार ने श्रीकृष्ण को देवता के रुप में दिखाया है जबकि " जयभारत " के कृष्ण षोडश कला अवतार होने पर भी वे मानवीय कर्म ही करते हैं. वे महामानव बन सकते हैं किन्तु मानवेतर नहीं क्योंकि आजके पाठक " महाभारत " के प्रसंग में श्रद्धा नहीं रखते . जयभारतकार ने उसी प्रसंग को इस प्रकार चित्रित किया है जिससे कृष्ण मानवरुप में ही रहे. वे मानवीय कर्म ही करते हैं.

" कुन्ती में सहज मातृहृदय एवं हिडिम्बा में नारी स्वभाव की स्थापना आदि महाभारत के लिए सर्वथा अपरिचित प्रकरण हैं, किंतु रस संचार में समर्थ होने के कारण महाकाव्यों को अपूर्व दीप्ति एवं मौलिकता प्रदान करते हैं और पूर्वलिखित उद्भावनाएँ तो नूतन अतएव मौलिक है. " [2]

युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते हैं. उस अवसर पर वे दुर्योधन को निमंत्रित करते हैं . तब दुर्योधन को मयकृत भवन में जल में थल का और स्थल में जल का आभास होता है. इसी समय द्रौपदी ने दुर्योधन का उपहास किया था. लेकिन गुप्तजी ने इस प्रसंग को बदल दिया है.

" हुआ कक्ष में घुसते उसको द्वार खुला प्रतिभात,
लगा किन्तु उसके ललाट में स्फटिक कपाटाघात ।
जल में थल का, थल में जल का . देख उसे भ्रम भास,
रोक न सके दास- दासी भी आकस्मिक उपहास ।। " [3]

---

1. जयभारत, पृ. 148.
2. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- डा० उमाकांत पृ. 162.
3. जयभारत, पृ. 144.

136

इस प्रकार द्रौपदी को बचाकर मैथिलीशरणजी अपने काव्य के पूज्य पात्र की रक्षा करते हैं. वस्तुतः गुप्तजी विश्व विख्यात एवं परम्परागत कथानकों में भी मौलिकता के दुष्कर समावेश में कृतकार्य हैं. और यह कृतकार्यता निश्चित रुप से उनकी सफल प्रबन्ध कल्पना की परिचायक है.

जैसे जैसे युग में परिवर्तन होता है वैसे ही युग की समस्याओं में भी परिवर्तन होता रहता है. ऐतिहासिक पात्रों को भी आज की परिस्थिति के अनुसार देखते हैं न कि उस समय की परिस्थिति के अनुसार. " जय भारत " काव्य के पात्र कर्ण और युयुत्सु के संवाद में बीसवीं शती के पूँजीवादी युग की समस्याओं का समाधान मिल जाता है. कर्ण युयुत्सु से प्रश्न करता है कि क्या दुर्योधन अन्न देता है. तब युयुत्सु कहता है -

" पाते हैं स्वयं कहाँ से वे ?
हम भी क्या नहीं जहाँ से वे ?
यों कौन किसे क्या देता है,
कोई किससे क्या लेता है ।
सीधा विनिमय व्यापार यहाँ,
समझूँ इसमें उपकार कहाँ ?
धनियों के हाथ भले धन है,
पर जन के साथ स्वजीवन है ।
पाता, जो स्वेद बहाता है,
धन तन का मैल कहाता है । " [1]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि मानो " कोई उग्र साम्यवादी नेता जनता को मार्क्स-दर्शन समझा रहा हो. " [2] गुप्तजी ने राम और कृष्ण

1. जयभारत, पृ. 348.

2. हिन्दी काव्य-दर्शन, हीरालाल तिवारी, पृ. 434.

के सगुण रुप का चित्रण किया है.

" जय भारत " में अर्जुन कृष्ण से कहते हैं-

" सेना रहे, मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं,
श्रीकृष्ण रहते हैं जहाँ, सब सिद्धियाँ रहती वहीं । " [1]

इतना होते हुए भी वर्तमान युग के अनुरुप ही उनके काव्य में ईश्वर के अलौकिक कृत्यों का वर्णन नहीं के बराबर मिलता है.

डा० नगेन्द्र के मतानुसार महाभारत का यह पुनराख्यान युगधर्म की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है, क्योंकि आज का युगधर्म है मानवतावाद और गुप्तजी ने महाभारत के पात्रों का पुनर्निमाण इसी के आधार पर किया है.

" जय भारत " में कवि ने युग के अनुसार " महाभारत " की अनेक अति प्राकृत एवं अति मानवीय घटनाओं को मानवीय धरातल पर रखने का प्रयास किया है. चित्रांगद और विचित्रवीर्य की मृत्यु के बाद उनकी पत्नियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु का जन्म नियोग की रीति से दिखाया है और पांडवों को भी देवपुत्र माना गया है. उसी बात को गुप्तजी ने मानवीय धरातल के अनुरुप वर्णित किया हैं-

" कुन्ती के सुत तीन युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन हुए,
धर्म, वायु, वासव के उनमें अंश पूर्ण सब गुण हुए ।
माद्री के दो नकुल और सहदेव अश्विनी सुत यथा,
कहने सुनने योग्य सर्वदा पाँच पाण्डवों की कथा । " [2]

" गुप्तजी आदर्श पात्रों में भी मानवीय गुण-दोषों का सन्धान करते

---

1. जयभारत, पृ. 301.
2. वही, पृ. 42.

हैं- अतिमानवीयता के स्थान पर मानवीय शक्ति का विकास दिखाते हैं. " जयभारत " में कृष्ण सर्वपूज्य पात्र हैं- किंतु हैं मानव ही. वे महामानव भले ही बन गए हैं पर महाभारत के समान अतिमानव नहीं. " [1]

" महाभारत " में जब कृष्ण शान्तिसंदेश लेकर जाते हैं तब उनके शरीर में ही अनेक देवता प्रकट होते हैं जबकि जयभारतकार ऐसी अलौकिक शक्तियों का वर्णन नहीं करते हैं. दुर्योधन कृष्ण के दृष्टि- विक्षेप के कारण ही बड़बड़ाता है और बादमें गिर भी जाता है. भगवान कृष्ण गुप्तजी के लिए पूज्य और देवता होते हुए भी उन्होंने उनको एक मानव के रुप में ही चित्रित किया है.

दुर्योधन परंपरा से कलंकित है- महाभारतकार ने उसे " सकल कपट अघ अवगुन खानी के रुप में चित्रित किया है. जयभारत के कवि ने भी यथा-स्थान उसके दुष्कृत्यों का उल्लेख किया है . किन्तु वह उस पापराशि के हृदयगत सौन्दर्य के भी दर्शन करता है. दुर्योधन का कर्मयोगी रुप देखिए--

" मैं अनुगृहीत हुआ, तोष यही मुझको,
अन्त तक कोई त्रुटि छोड़ी नहीं हमने । " [2]

इससे स्पष्ट होता है कि कविवर गुप्तजी पाषाण हृदय के पात्र में भी कोमल भावना दिखाते हैं. जब दुर्योधन की आत्मा की शांति के लिए अश्वत्थामा पाण्डवों की हत्या करने की प्रतिज्ञा करता है तब वह कहता है-

" ठाठ से मैं आया और ठाठ से ही जाऊँगा । " [3]

" जयभारत " में दुर्योधन के अलावा अन्य पात्रों- रावण, कर्ण और दुःशासन के चरित्रों में भी मानवीयता को महत्व दिया गया है. कर्ण के चरित्र

---

1. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, उमाकान्त, पृ. 172.
2. जयभारत, पृ. 400.
3. वही, पृ. 403.

में मित्र-धर्म के निर्वाह से ही उसको संपूर्ण दोषों से मुक्ति मिलती है. वह आपत्काल में अपने मित्र को त्यागना नहीं चाहता है.

" क्या संकट में उसे छोड़ दूँ जो मुझ पर अवलम्बित है । " [1]

कवि दुष्ट दुःशासन के चरित्र में भी भ्रातृभावना को महत्व देते हैं, अर्थात् गुप्तजी की दृष्टि किसी पात्र में दोष देखने की ओर न होकर उसमें मानवीय प्रेरणा के उद्घाटन की ओर ही रही है. वास्तव में वे मानवीय संबंधों के कवि हैं. उनकी कविता का मुख्य विषय मानव ही है- मानवेतर सृष्टि की ओर उनका ध्यान नहीं जाता.

गुप्तजी मानवतावादी कवि हैं. उन्होंने " जयभारत " में मानवतावाद के तत्वों का उल्लेख किया है. ये तत्व समता, प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि हैं. वे मानते हैं कि सभी मनुष्यों में ईश्वर का अंश है. उन्होंने जन्मगत जातिबंधनों की अवहेलना की है. वे मानव मात्र के प्रति समान दृष्टि से देखते हैं. इसका कारण युगीन प्रभाव है. व्यक्ति अपने अहं से ही संकीर्णता की सृष्टि करता है. और सीमित बन जाता है. यदि व्यक्ति " अहं " को त्याग कर उसमें समाज को सम्मिलित कर दे तभी मानवतावाद की स्थापना हो सकती है. कृष्ण ने कौरवों को कहा था -

" वह अहं हमीं हम तो नहीं, हम भी उसका अर्थ है,
जो सबको लेकर चल सके, सच्चा वही समर्थ है । " [2]

" अपना क्षेम तभी संभव है, जब हो औरों का भी क्षेम । " [3]

" गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः " के आधार पर गुप्तजी ने मानवमात्र में गुणों की प्रतिष्ठा की हैं. उन्होंने कुल को नहीं लेकिन

---

1. जयभारत, पृ. 343.
2. वही, पृ. 320.
3. वही, पृ. 67.

शील को ही महत्व दिया है. उन्होंने गुणों के माध्यम से ही मानवता की प्रतिष्ठा की है. " जय भारत " में एकलव्य कहता है --

" गुरुवर, नहीं अरजिन्यों में क्या ईश्वर का अंश ?
और नहीं है क्या उनका भी वही मूल मनुवंश ? " [1]

एकलव्य की जिज्ञासा ने समाज में प्रतिष्ठित जिस जन्मगत आभिजात्य को चुनौती दी है, वह वर्तमान युग की भावना पर आश्रित विवेकबुद्धि का ही फल है.

महाभारतकार ने अपने काव्य में मानव की प्रतिष्ठा की है. व्यासमुनि ने लिखा है कि-

" न मानुषाद श्रेष्ठतरं हि किंचित " " जयभारत " के मंगलाचरण में भी नर की महिमा का गान किया गया है.

" नमो नारायण, नमो नर, - प्रवर पौरुष- केतु,
नमो भारति देवि, वन्दे व्यास, जय के हेतु । " [2]

इसके बाद काव्य के आरंभ में वे कहते हैं-

" नारायण ! नारायण ! साधु नर-साधना " [3]

" जय भारत " के उपसंहार में भी नर को ही महत्ता दी गई है. युधिष्ठिर कहते हैं--

" हे नारायण, क्या और कहूँ,
तू निज नर मात्र मुझे रखना, " [4]

---

1. जय भारत, पृ. 53.
2. वही, पृ. 9.
3. वही, पृ. 10.
4. वही, पृ. 445.

भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर को कहा था-

सस्मित नारायण प्रकट हुए-

" आओ, हे मेरे नर आओ ।
जो कुछ है, जहाँ, तुम्हारा है,
मुझको पाकर सबकुछ पाओ । "[1]

" नर-देह में मानव की गौरव- महिमा से मंडित युधिष्ठिर को देखकर यही लगता है कि नरजन्म से बढ़कर इस संसार में कुछ काम्य नहीं, मानवधर्म से बढ़कर कुछ साध्य नहीं, मानवता की उपासना से बढ़कर कुछ उपास्य नहीं. सच्ची नर x साधना ही ऐहिक एवं आमुष्मिक सुख-शांति की जननी है. और इस संसार में मानवात्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मंतव्य और निदिध्यासितव्य है. "[2]

" जय भारत " में महाभारतीय धर्म को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया गया है, परन्तु उसे मानवधर्म के रुप में ही ग्रहण किया गया है. युधिष्ठिर की निम्न पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि होती है -

" राम, अब भी मैं यही कहता हूँ मन से
कामना नहीं है मुझे राज्य की, वा स्वर्ग की,
किंवा अपवर्ग की भी, चाहता हूँ मैं यही
ज्वाला ही जुड़ा सकूँ मैं अपनों के दुखकी
भोगूँ अपनों का सुख, मेरा पर कौन है ?
सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हों,
सब शुभ पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी । "[3]

---

1. जय भारत, पृ. 452.
2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ -" जय भारत " समीक्षात्मक अध्ययन- श्री विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 604.
3. जय भारत, पृ. 410.

142

" सत्य और अहिंसामयी सात्विक मानवता को युधिष्ठिर के व्यक्तित्व में चरितार्थ किया गया है. जिस धर्म की परीक्षा में युधिष्ठिर बारबार उत्तीर्ण हुए और उन्हें अश्वत्थामा विषयक अर्द्धसत्य के कथन पर नरक को देखकर आना पड़ा है, वह वस्तुतः मानवता की ही परीक्षा है और उसका आदर्श रुप भी. " जय भारत " इसी मानवता का जयघोष है. यही कारण है कि गुप्तजी ने महाभारतीय आख्यानों को स्वतंत्र और प्रकीर्ण न रखकर " जय भारत " के संकलित प्रबन्ध के रुप में विन्यस्त किया है. " [1]

हिडिम्बा

" महाभारत " के आदिपर्व में प्राप्त होनेवाली हिडिम्बा की कथा को इस रचना का आधार बनाया गया है. किंतु कथा की नियोजना गुप्तजी ने अपने ढ़ंग से की है. " हिडिम्बा " के निम्न स्थलों से कवि की मौलिकता का पता लग जाता है.

" महाभारत " में भीम प्रधान पात्र है जबकि " हिडिम्बा " में हिडिम्बा. भीम की ओर आकर्षित हो जाने के बाद " महाभारत " की हिडिम्बा अपने भाई हिडिम्ब को अशोभन शब्द कहती है --

" आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः । " [2]

किन्तु हिडिम्बा में कवि कहते है--

" आ गया इसी क्षण हिडिम्ब यमदूत- सा,
भीरुओं की कल्पना का सच्चा भय-भूत-सा । " [3]

" महाभारत " के भीम हिडिम्बा को अपने बाहुबल का ज्ञान भुजा दिखाकर करवाते हैं-

---

1. मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक, पृ. 235.

2. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-153, श्लोक 4.

3. हिडिम्बा, पृ.18.

" नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मय ।
सोऽहं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसा: ।।
पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविभौ ।
ऊरु परिघसंकाशौ संहतं चाप्युरो महद ।। "[1]

तब गुप्तजी के भीम कहते है -

" प्रेम करने या कृपा करने तू आई है ?
जा, बुला ला, देखूँ कौन तेरा वह भाई है । "[2]

" महाभारत के भीम हिडिम्बा में काम की प्रेरणा देखते हैं. तब गुप्तजी कहते हैं --

" इसका क्या दोष, तुझे भूख, इसे प्यास है । "[3]

" महाभारत " की हिडिम्बा भीम को अपनाने के लिए काम-पीड़ा की बात करती है -

" आर्ये जानासि यद्दुःखमिह स्त्रीणामनंग
तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ।।

× × × ×

प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद ब्रवीमिते । "[4]

लेकिन गुप्तजी की हिडिम्बा स्त्री सुलभ तर्क ही देती है -

" कुछ भी सही मैं, किन्तु मेरे भी हृदय है,
औरों का नहीं तो मुझे अपना ही भय है ।
न्याय से उन्हीं पर न भार मेरा सारा है
रक्षक जिन्होंने एक मात्र मेरा मारा है । "[5]

---

1. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय- 153, श्लोक 8-9
2. हिडिम्बा- पृ. 17
3. वही, पृ. 21.
4. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय- 153, श्लोक- 25-27.
5. हिडिम्बा, पृ. 33.

गुप्तजी ने कथा के मूलरुप को रखते हुए भी उसे आधुनिक युग के अनुरुप बनाने का प्रयत्न किया है.

हिडिम्बा के पात्र अमानव अथवा अतिमानव थे. लेकिन आज के पाठक अतिमानवीयता में विश्वास नहीं करते. " राक्षसी होने पर भी हिडिम्बा भीम की ओर आते हुए अपने भाई हिडिम्ब के विषय में महाभारत के समान अपशब्दों की झड़ी नहीं लगा देती. इस प्रकार मैथिलीशरण पात्रों के प्रथितरुप की रक्षा करते हुए भी उनमें यथासंभव अकृत्रिम मानवता का समावेश करते हैं. "[1]

गुप्तजी आधुनिक युग में मानवीयता को अत्यधिक महत्व देते हैं. कवि ने हिडिम्बा को मानवीय स्त्री के रुप में चित्रित किया है -

" होकर मैं राक्षसी भी अन्त में तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जो भी रहूँ, जाति से तुम्हारी हूँ । "[2]

गुप्तजी अपने राक्षस पात्रों में भी मानवीयता का अंकन करते हैं-

" प्राणि मात्र सहज प्रवृत्तियों में एक से,
राक्षस भी चलते हैं अपने विवेक से ।
निर्भय ये मारते हैं निर्भय हैं मरते,
किन्तु अपनों की लूट - मार नहीं करते । "[3]

" तुम पचो हममें वा हम तुममें पचे । "[4]

वे मानते हैं कि विश्व का विकास तभी संभव है जबकि मानव और राक्षस दोनों मिलकर कार्य करें.

गुप्तजी वैर-भावना का समाधान प्रेम में देखते हैं. उनकी हिडिम्बा कहती है -

---

।. मैथिलीशरण गुप्त -कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकांत, पृ. 49-50.

2. हिडिम्बा, पृ.43.

3. वही, पृ. 4।.

4. वही, पृ. 4।.

" यदि तुम आर्य हो तो दो हमें भी आर्यता, [1]

× × ×

वर जिसे बैठी उस अर्द्धर के हाथ हूँ । " [2]

इस प्रकार गुप्तजी प्राचीन कथानक में यथास्थल परिवर्तन भी करते हैं. और आधुनिक काल में लिखित इस रचना में आधुनिकता को महत्व देते हैं. वस्तुतः इसमें हिडिम्बा के सच्चे प्रेम की व्यंजना की गई है.

" हिडिम्बा " के भीम पराक्रमी होते हुए भी हिडिम्बा के लिए आतुर नहीं है. वरन् वे संयमी है.

गुप्तजी हिडिम्बा को एक मानवीय स्त्री के रुप में चित्रित करते हैं फिरभी उसकी अलौकिक शक्ति का परिचय इन शब्दों में देते हैं-

" भार नहीं हूँगी मैं तुम्हारे भीम के लिए,
विचरूँगी व्योम में भी उनको लिये- दिये । " [3]

इस प्रकार इस काव्य में भीम द्वारा हिडिम्बा राक्षसी को पत्नी के रुप में अपनाकर उसे आर्यत्व प्रदान कर नई मानवता प्रदान करने का उल्लेख है.

युद्ध

वस्तुतः " युद्ध " गुप्तजी द्वारा रचित " जयभारत " का ही एक अंश है, जिसका प्रकाशन एक स्वतंत्र पुस्तक के रुप में हुआ है. इसमें महाभारत का युद्ध वर्णित है. युद्ध के विषय में गुप्तजी के अपने विचार व्यक्त हुए हैं.

इसमें महाभारत के युद्ध विषयक भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य पर्वों का आख्यान चित्रित हुआ है. युद्धारंभ से लेकर दुर्योधन के गदा-युद्ध में परास्त होने

1. हिडिम्बा, पृ. 34.
2. वही, पृ. 24.
3. वही, पृ. 43.

146

तक का विषय इसमें वर्णित है.

अभिव्यक्ति पक्ष

भाषा

जब साहित्य-जगत में गुप्तजी ने पदार्पण किया तब खड़ीबोली अविकसित रुप में थी. तत्कालीन कवि लोग ब्रजभाषा में ही कविता लिखते थे. वे ब्रज को ही काव्यभाषा मानते थे. उस समय खड़ीबोली में कुछ प्रयोगात्मक कविताएँ लिखी जाने लगी थी. श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली को कर्णकटु आदि दोषों से मुक्त किया. किन्तु इस क्षेत्र में गुप्तजी की देन अपूर्व है.

रामधारीसिंह दिनकर ने लिखा है कि " खड़ीबोली की कविता का बहुत बड़ा इतिहास गुप्तजी की कृतियों का इतिहास हैं. उन्होंने खड़ीबोली को अँगुली पकड़कर चलना सिखाया, उसकी जिह्वा को शुद्ध किया तथा उसके हृदय में प्रेम एवं मस्तिष्क में अभिनव विचारों का संचार किया. उनका उत्थान द्विवेदी- मण्डल के सबसे बड़े प्रकाशस्तम्भ के रुप में हुआ जिसके दूरगामी प्रकाश में खड़ीबोली ने अपनी गन्तव्य दिशा का ध्यान एवं अपने आदर्श का अवलोकन किया. " [1]

सन 1909 ई0 के बाद उनकी भाषा में निखार आया है. फिरभी " जयद्रथ-वध " की भाषा संस्कृत के शब्दों से मुक्त नहीं है.

" पशवादि भी निज स्वामियों के भाव को पहचानते,
सब निज जनों के दुःख में दुख, सौख्य में सुख मानते । " [2]

" सिंहासनस्थ रमा सहित शोभित वहाँ भगवान थे । " [3]

---

1. मिट्टी की ओर, रामधारीसिंह दिनकर, पृ. 130.

2. जयद्रथ-वध, पृ. 89.

3. वही, पृ. 53.

इस पद-योजना के अतिरिक्त संस्कृत शब्दों के अस्वाभाविक प्रयोग भी हुए हैं. जैसे-

" अतएव उनके स्कन्ध पर हरि ने करारोपण किया । " [1]

यहाँ " हाथ रखने " की जगह पर " करारोपण " का प्रयोग हुआ है. निम्नपंक्ति में बोलचाल के शब्द का प्रयोग हुआ है -

" बढ़ने अगाड़ी ही लगे वे शीघ्र तिरछी चाल से । " [2]

" सैरन्ध्री " में खड़ीबोली का उत्कर्ष रुप मिलता है. " वन-वैभव " की भाषा काफी परिष्कृत है. इस काव्य की शैली नवीन, मौलिक एवं प्रभावमय है. इस काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज, ग्राम्य आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं.

" अतुल वह अपना हेमागार,
जलाकार कर देने को छार " [3]

" प्रबल हों वे या पूरे पोच,
कहूँगा यह मैं निस्संकोच,
नहीं है उनके मन में मोच " [4]

" वक-संहार " की भाषा स्पष्ट, प्रवाहशील तथा प्रसादगुणमयी है. इसमें सानन्द, सन्ध्योपासना, परितृप्त, पृथुल, निर्गत, पुनरपि, अजिर, ओक, मुद्रासीन, जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है. इन तत्सम शब्दों के अतिरिक्त साथ, हिया, लीक, सिहर, धुव, पराइ, जी, देहली, जैसे तद्भव देशज तथा प्रान्तीय शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं. " गुप्तजी का लक्ष्य खड़ीबोली के उत्कर्ष की ओर रहा है, किन्तु भारतीय परम्परा, आदर्श और संस्कृति के

1. जयद्रथ-वध, पृ. 50.
2. वही, पृ. 75.
3. वही, पृ. वन-वैभव, पृ. 3.
4. वही, पृ. 6.

बिना उनके लिए किसी बात की कल्पना करना भी कठिन है. स्वभावतः उनकी रचनाओं में खड़ीबोली इन समस्त संस्कारों से सम्पृक्त है. इस रचना में सन्ध्योपासना, पाणिग्रहण, होमाग्नि तथा सहधर्मिणी आदि शब्द इन्हीं भावनाओं को प्रकट करते हैं. समय की गति को पहचानकर गुप्तजी ने भाषा का परिष्कार उसी रुप में किया है जिससे उसकी प्रगति में बाधा न होकर विकास का ही आभास हो. "[1]

" द्वापर " की भाषा प्रौढ़ तथा प्रांजल है. इसमें तत्सम, तद्भव तथा आंचलिक शब्दों का प्रयोग हुआ है.

" इष्ट एक हय मेघ हेतु था
व्यापक विजय जहाँ पर,
एक यूप से बँधे पड़े हैं
सौ पशु-मेघ वहाँ पर, । "[2]
कम क्या घृत दधि- दुग्ध-शर्करा,
देव-अन्न ओदन ही,
श्रुति न विरोध करे तो समझो
उसका अनुमोदन ही । "[3]

यहाँ "हयमेध " तथा " पशुमेघ " के साथ " यूप " का प्रयोग उचित है. यज्ञ-पुरुष के साथ घृत, दधि, दुग्ध, शर्करा तथा अन्नमोदन का प्रयोग सर्वथा सार्थक है.

" गायों भरा गोठ गाये हैं
दूध-भरी सब मेरी ।
बनी गिरस्ती क्षीरोदधि की
पूर्ण तरी अब मेरी । "[4]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त का खड़ीबोली के उत्कर्ष में योगदान, सहदेव वर्मा-पृ. 217.
2. द्वापर, पृ. 44.
3. वही, पृ. 44.
4. वही, पृ. 19-20.

149

यहाँ " गोठ ", " गिरस्ती " आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है. इसी प्रकार गैल, बांटे, पिटारी, परस, पड़ा, दाई, छिन्न, भैया, रिस जैसे तद्भव एवं आंचलिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं.

इसमें प्रयुक्त तत्सम शब्द खड़ीबोली के अपने हो गये हैं. दावानल, परिवर्तन, उर्वस, नैवेद्य, आत्मघाती, प्रतिवादी, विभूति, ऊष्मा, सचिव आदि ऐसे ही तत्सम शब्द हैं.

निम्न पद्य में तत्सम पदावली का प्रयोग हुआ है. लेकिन यह पदावली संस्कृत न रहकर हिन्दी बन गई है.

" हाय ! वधू ने क्या वर- विषयक
एक वासना पाई ?
नहीं और कोई क्या उसका
पिता, पुत्र या भाई " [1]

" नहुष " खण्डकाव्य की भाषा परिमार्जित है. इसमें ब्रज एवं प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है. " नहुष " में तत्सम शब्दों का प्रचलित रूप मिलता है.

" काल अपराहन, तरु तन्द्रित-से चुप थे,
नीचे मृग, ऊपर विहग बैठे चुप थे ।
अस्थिर शची ही थी सखी के साथ मन में
शान्त सुर गुरु के सुरम्य तपोवन में ।। " [2]

यहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है.

" उठना मुझे ही नहीं एक मात्र रीते हाथ . " [3]

---

1. द्वापर, पृ. 25.
2. नहुष, पृ. 46.
3. वही, पृ. 66.

150

जैसे तद्भव शब्द का भी प्रयोग हुआ है. " रीते हाथ " में स्वाभाविकता है वैसी स्वाभाविकता " खाली हाथ " में या तो " रिक्त हस्त " में नहीं है.

" हिडिम्बा " विषय की दृष्टि से " पंचवटी " की श्रेणी में आती है लेकिन भाषा की दृष्टि से नहीं. इसमें संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का उचित प्रयोग हुआ है.

" हिडिम्बा " में कहीं-2 अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का भी प्रयोग हुआ है.

" मैं हूँ " हँस बोली वह- " जो भी तुम जान लो ,
हानि क्या मुझे यदि निशाचरी ही मान लो ।। " [1]

" जय भारत " शुद्ध एवं परिष्कृत खड़ीबोली में लिखा गया है. सन् 1908 में कवि की भाषा का यह रुप मिलता है-

" फिर दुष्ट दुशासन हुआ था तुष्ट जिनको खींच के.
ले दाहिने कर में वही निज केश लोचन खींच के ।।
रखकर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध हरिणी सी हुई ।
बोली विकल- तर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी ।। " [2]

किन्तु सन् 1952 में उपरोक्त पद्य को इस प्रकार लिखा गया-

" फिर दुष्ट दुःशासन हुआ था तुष्ट जिनको खींच के,
वे केश लेकर वाम कर में अश्रुजल से सींच के,
हृदयस्थ दक्षिण कर किए, शरविद्ध हरिणी-सी हता,
कहने लगी वह मानिनी वा चू उठी पावक लता ।। " [3]

इससे स्पष्ट है कि उनकी भाषा का क्रमिक विकास हुआ है. सर्वनाम तथा क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं है. दोनों पद्यों को देखने से यह पता चलता

---

1. हिडिम्बा, पृ. 15.
2. मंगल घट, पृ. 119.
3. जय भारत, पृ. 317.

है कि शब्द-चयन में परिवर्तन अवश्य हुआ है. " रखकर हृदय पर वाम कर " में रुखता है जबकि " हृदयस्थ दक्षिण कर किए " में सरसता है. प्रथम पद्य में " विकलतर " का प्रयोग हुआ है किन्तु दूसरे पद्य में " मानिनी " का. " विकलता " में सिर्फ " दीनता " का भाव है. " मानिनी " में हृदयस्थ मलाल, स्वाभिमान तथा " आक्रोश " की भावना विद्यमान है.

" अतः अब वाणी में केवल करुणा की पुकार न होकर आवेश की ज्वाला का भी समावेश है. इस प्रकार भाषा का उत्कर्ष तो स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता है. " [1]

निम्न पद्य में भाषा की सफाई के साथ साथ प्रभावशाली अभिव्यंजना हुई है.

" कामना नहीं है मुझे राज्य की, वा स्वर्ग की,
किंवा अपवर्ग की भी, चाहता हूँ मैं यही
ज्वाला ही जुड़ा सकूँ मैं अपनों के दुःख की
भोगूँ अपनों का सुख, मेरा पर कौन है ? " [2]

" जय भारत " में वर्णित " रण निमन्त्रण " शीर्षक में संस्कृत तत्सम शब्दावली की अधिकता है और वाक्य-गठन को प्रधानता दी गई है. जैसे-

" घन और भस्म-विमुक्त भानु-कृशानु-सम शोभित नये,
अज्ञातवास समाप्त करके प्रकट पाण्डव हो गये । " [3]

यह भाषा प्रारम्भिक रचनाओं की है. इसके बाद लिखी गई रचनाओं की भाषा काफी परिमार्जित है.

---

1. मैथिलीशरण गुप्त का खड़ीबोली के उत्कर्ष में योगदान- सहदेव वर्मा- पृ. 259.
2. जय भारत, पृ. 410
3. वही, पृ. 297.

" गये कृष्ण निज धाम राम-सह कर संवरण रचलीला,
स्तब्ध पाण्डवों के वदनों का वर्ण पड़ गया पीला । " [1]

इससे स्पष्ट है कि द्वितीय पद की भाषा स्पष्ट, स्वच्छ एवं व्यंजनात्मक है. " जय भारत " को कवि ने " अपनी लेखनी का क्रम-विकास ही समझा . " [2]

युद्ध

आख्यान काव्य की भाषा भी प्रवाहशील और परिष्कृत है तथा भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कृति है.

मुहावरें

" जयद्रथ-वध " में अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर जयद्रथ चिंतित हो गया तब कुरुराज ने कहा कि जबतक कौरव पक्ष का एक व्यक्ति भी जीवित होगा तबतक जयद्रथ को कोई मार नहीं सकेगा.

" जब तक हमारे पक्ष का जन एक भी जीवन धरे,
है कौन ऐसा जो तुम्हारा बाल भी बाँका करे ? " [3]

कहीं-कहीं कवि ने उर्दू ढंग के मुहावरों का भी प्रयोग किया है.

" विष-बीज बोने से कभी जग में सुफल फलता नहीं,
विश्वेश की विधि पर किसीका वश कभी चलता नहीं ।।" [4]

" हाँ अप्सराएँ आप तुम पर मर रही होंगी वहाँ । " [5]

अर्जुन ने युद्ध में अनेक शत्रुओं की हत्या की---

1. जय भारत, पृ.434.
2. वही, निवेदन,
3. जयद्रथ-वध, पृ. 42.
4. वही, पृ. 68.
5. वही, पृ. 24.

" जानें उन्होंने शत्रुगण कितने वहाँ मारे नहीं,
जाते किसीसे हैं गिने आकाश के तारे कहीं ? " [1]

" सैरन्ध्री " में द्रौपदी सुदेष्णा की दासी बनकर रहती है. वहाँ उसे अत्यन्त दुःख होता है.

" छाती फटती हाय ! दुःख दूना मैं पाती । " [2]

कीचक के प्रहार से द्रौपदी गिर पड़ी. यह देखकर सारी सभा स्तब्ध हो गई.

" हुए स्तब्ध-से सभी सभासद " अरे, अरे ! कह ! " [3]

" हमारा विभव हमीं को आज,
दिखाने आया शत्रु समाज !
नहीं आती नीचों को लाज,
देख लूँगा मैं सारे साज ।
हँसे वे, मैं मुँह तोड़ूँगा,
न जीता उनको छोड़ूँगा । " [4]

यहाँ लाज न आना, जी मुँह तोड़ना आदि मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव बन गई है. " एक ढेले में दो पक्षी " [5] " जले पर नमक छिड़कने हाय ! " [6] मन को मारना आदि मुहावरों का भी " वन-वैभव " में सुन्दर प्रयोग हुआ है.

---

1. जयद्रथ-वध, पृ. 65.
2. सैरन्ध्री, पृ. 33.
3. वही, पृ. 30.
4. वन-वैभव, पृ. 14.
5. वही, पृ. 4.
6. वही, पृ. 6.

" जो थी शिला-सी निश्चला,
अब रुँध गया उसका गला,
वह देर तक जल-मग्न-सी लेटी रही । " [1]

यहाँ " शिला-सी निश्चला ", " जल-मग्न-सी लेटी रहना " आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग किया गया है. " वक-संहार " में उर्दू ढंग के मुहावरें भी मिलते हैं.

" पर है यहाँ की जो प्रजा,
जो है बनी बलि की अजा, " [2]

" द्वापर " में " धन-जीवन सब वारो " [3] " मुँह दिखलाते किसको " [4] " क्या सचमुच मैं सिहर उठा हूँ ", [5] " हाय ! उलहना लाकर हमसे अब कोई न लड़ेगा " [6], " परित्राण मैं पाऊँ " [7] आदि मुहावरों का प्रयोग हुआ है.

" नहुष " में इन्द्र के चले जाने से शची को दुःख होता है कि वे छिपकर बैठ गए हैं.

---

1. वक-संहार, पृ. 34
2. वही, पृ. 23.
3. द्वापर, पृ. 42.
4. वही, पृ. 76.
5. वही, पृ. 85.
6. वही, पृ. 99.
7. वही, पृ. 109.

" वे भी छिप बैठे दुःखिनी से मुँह मोड़के ! " [1] " विघ्नों में विचरते हैं, डर सकते हैं हम, " [2] " इन्द्राणी अवाक् जैसे हत हो " [3] आदि मुहावरों का प्रयोग भी " नहुष " में हुआ है.

एकलव्य ने द्रोणाचार्य को अपना अँगूठा काटकर दे दिया. यह देखकर देखनेवाले स्तब्ध हो गये और उनकी आँखों में अश्रु आ गये
" जड़ीभूत रह गये देखते वे दारुण-विभ्राट ।
आँखों में आँसू भर आये, कंठ हुआ अवरुद्ध " [4] इसके अलावा कवि ने " कुन्ती मूर्च्छित हुई अचानक इसी समय में. " [5] कृतकृत्य हुआ हूँ मैं आकर " [6] आदि मुहावरों का और अंग्रेजी और संस्कृत के मुहावरों का भी प्रयोग किया है. जैसे- पलटा पृष्ठ उसी ने " तुमको सुर पुर कैसा भाया । " [7] यहाँ अंग्रेजी के to turn page का अनुवाद रूप में प्रयोग किया गया है.

माता कुंती और पाण्डव गंगा को पारकर वन में जाते हैं. वहाँ माता कुन्ती अचेत -सी हो जाती है. " झड़-सी पड़ी वह बड़ी-सी वट-छाया में " [8] वन में आकर भीम ने कहा कि " आज हम मरते से जी गये " [9] आदि मुहावरों का प्रयोग किया गया है.

---

1. नहुष, पृ. 19
2. वही, पृ. 28
3. वही, पृ. 49.
4. जय भारत, पृ. 56.
5. वही, पृ. 63.
6. वही, पृ. 351.
7. वही, पृ. 187.
8. हिडिम्बा, पृ. 9.
9. वही, पृ. 11

अभिमन्यु ने अपने अंतमें इस प्रकार कहा- " कायर बनाके तुम्हें,मरके भी जीता मैं " [1] अर्थात उसने अपने जीवन को सार्थक किया है. " पाण्डवों का सारा बल अस्तव्यस्त हो गया " [2], पैरों पर वे गिरे " [3] आदि मुहावरों का भी " युद्ध " काव्य में प्रयोग हुआ है.

लोकोक्तियाँ
=:=:=:=:=:=

अभिमन्यु मर गया है फिरभी अर्जुन को लगता है कि वह जीवित ही है. लेकिन निरर्थक चीज का कोई मूल्य नहीं होता है. हा ! स्वप्न के वैभव किसी के काम आते है नहीं, " [4] जिसकी सिरोही सिर उसीका " [5] आदि लोकोक्तियाँ का " जयद्रथ-वध " में प्रयोग हुआ है.

सैरन्ध्री को अपनी इच्छा के विरुद्ध सुदेष्णा की आज्ञा से कीचक को चित्र देने के लिए जाना पड़ता है तब वह कहती है-

" पापी जन का पाप उसीका भक्षक होगा,
मेरा तो ध्रुव-धर्म सहायक रक्षक होगा । " [6]

चित्ररथ ने कर्णादिक को कहा कि-

" धिक पापाचार !
दण्ड ही है तेरा उपचार । " [7]
" मरें भी, पर न करेंगे आह,
स्वर्ग की खुली पड़ी है राह । " [8]

---

1. युद्ध, पृ. 15
2. वही, पृ. 5.
3. वही, पृ. 25.
4. जयद्रथ-वध, पृ. 30
5. वही, पृ. 79.
6. सैरन्ध्री,पृ. 24
7. वन-वैभव, पृ. 27
8. वही, पृ. 17.

ब्राह्मण मृत्यु से भयभीत होकर भाग जाना नहीं चाहता है. वह उस गाँव में रहना और मरना पसंद करता है.

" दस भाइयों के साथ मरना भी भला " ।

" द्वापर " में नन्द कृष्ण को मथुरा छोड़कर आते हैं. तब वे कहते हैं-

" देवकी का वह
कोष उसी को देकर " [2]

नहुष स्वर्ग में आकर विराम नहीं लेता है. अब तो वह वर्तमान को भोगना चाहता है."अच्छी लगती है खुजली भी खुजलाने में " [3] " सेवन से और बढ़ते विषय है " [4] " मानस के मद की नदी-सी चढ़ने लगी " [5] आदि लोकोक्तियों का कवि ने " नहुष " में प्रयोग किया है.

बुरे काम का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता है.

" होता है परिणाम कहीं भी बुरे काम का भला नहीं " [6]

" युद्ध " में कुरुपति ने कर्ण को इस प्रकार कहा -

" इतना यथेष्ट मुझे, आप गुरुजन है,
कटु भी बनेगा मिष्ट मेरे लिए आपका । " [7]

---

1. वक-संहार, पृ. 25.
2. द्वापर, पृ. 95.
3. नहुष, पृ. 39.
4. वही, पृ. 39
5. वही, पृ. 40
6. जय भारत, पृ. 283.
7. युद्ध, पृ. 37.

कर्ण शत्रु से लड़ना चाहता है. इसका कैसा भी परिणाम क्यों न हो. उसको आपस में लड़ना पसंद नहीं है. उसने यह श्रद्धा व्यक्त की है कि कुरुपति का कटु भी मिष्ट बन जायेगा.

सूक्तियाँ

" जयद्रथ-वध " में जब कौरव पाण्डवों को राज्य देने के लिए तैयार नहीं हुए तब उन दोनों के बीच युद्ध अनिवार्य हो गया. अगर दुर्योधन ने हठ न रखी होती तो उनका विनाश न होता.

" ले डूबता है एक पापी नाव को मँझधार में " [1]

प्राण से अधिक मूल्यवान चीज जगत में ओर कोई नहीं है, तथा मृत्यु से अधिक अप्रिय अन्य कोई वस्तु नहीं है.

" है वस्तु अप्रिय अन्य जग में मृत्यु से बढ़कर नहीं " [2]

" सैरन्ध्री " में द्रौपदी कीचक के पास चित्र लेकर जाती है. तब वह कहती है –

" हो दिनकर देव तुम, मेरे शुद्धाचार के " [3]

हम अबलाएँ तो एक की, होकर रहती हैं सदा ।
तुम पुरुषों को सौ भी नहीं, होती हैं तृप्ति-प्रदा । " [4]

" वन-वैभव " में गन्धर्वराज चित्ररथ से बँध जाने के बाद कौरवों का सचिव मदद के लिए पाण्डवों के पास आये. तब भीम ने कहा कि अब कौरव दल कुछ भी कर सकता है. तब पाण्डव पति ने उनको रोका. युधिष्ठिर ने अर्जुन को कौरवों की मदद के लिए भेजा. अर्जुन ने चित्ररथ को हराकर कौरवराज को मुक्त किया. तब चित्ररथ ने कहा कि अर्जुन ने तो अपने शत्रु के शत्रु को हराया है.

1. जयद्रथ-वध, पृ.6.
2. वही, पृ. 40
3. सैरन्ध्री, पृ. 24.
4. वही, पृ. 13.

" आत्मजय तुमने पाया है,
शत्रु का शत्रु हराया है " [1]

" स्वर्ग यदि न भी मिलेगा हाल,
नरक कोई न सकेगा टाल " [2]

" वक-संहार " में भीम को भक्ष्य के लिए जाने में आनंद आता है. क्योंकि उनको भिक्षा माँगकर खाने में आनंद नहीं आता था. वे कुछ काम करना भी चाहते थे.

" क्या भाग्य में हाय ! भिक्षा भोग ही " [3]

नहुष शची को पाने की इच्छा रखता है जिससे उसका पतन होता है. तब वह कहता है कि वह नारद की बात भूल गया था.

दैत्यों से बचाये यह भोगधाम रहना " [4]

इन्द्र पद की प्राप्ति के बाद भी नहुष को संतोष नहीं होता है. वह कुछ करने की इच्छा रखता था-

" फल से क्या, उत्सुक मैं कुछ कर जाने को " [5]
" सीमा क्या यही है पुरुषार्थ की पुरुष के " [6]
" आप में हमारा काम आज मूर्तिमन्त है । "
चलिए न, नन्दन में उत्सुक वसन्त हैं ।। " [7]

1. वन-वैभव, पृ. 37.
2. वही, पृ. 32.
3. वक-संहार, पृ. 38.
4. नहुष, पृ. 65.
5. वही, पृ. 25.
6. वही, पृ. 25.
7. वही, पृ. 37.

मिलने में आनन्द रहता है लेकिन बिछुड़ने में दुःख होता है.

" मिलना ही आनन्द, बिछुड़ना खेद है,
पुनर्मिलन ही इष्ट जहाँ विच्छेद है । " [1]

जैसे इंधनों से आग बढ़ती रहती है वैसे ही भोगने से कभी भी राग घटता नहीं है.

" भोगने से कब घटे हैं रोग रुपी राग,
और बढ़ती है निरन्तर इँधनों से आग । " [2]

इसके अलावा

" होता सदा है मानियों को मान प्यारा प्राण से ।
यश से धनी हैं जो उन्हें अपयश कराल कृपाण से । " [3]

" कीर्तिमान जन मरा हुआ भी अमर हुआ जग में जीता । " [4]

आदि सूक्तियों का प्रयोग भी हुआ है.

" हिडिम्बा " में भीम के शौर्य को देखकर मरते हुए हिडिम्ब ने कहा-

" बहन, सुखी हो, वर तूने योग्य ही चुना । " [5]

इसके अतिरिक्त

" स्त्री का गुण रुप में है और कुल शील में,
पद्मिनी की पंकजता डूबे किसी झील में । " [6]

---

1. जय भारत, पृ. 138.
2. वही, पृ. 29.
3. वही, पृ. 316.
4. वही, पृ. 283.
5. हिडिम्बा, पृ. 23.
6. वही, पृ. 28.

आदि सूक्तियों का प्रयोग भी किया है. " युद्ध " में युधिष्ठिर ने यह इच्छा व्यक्त की है कि सबका अच्छा ही हो, स्वयं की भले दुर्गति हो.

" दुर्गति हो मेरी भले, सबकी सुगति हो. । " [1]

" नहीं, नहीं, पाप कभी पुण्य नहीं होता है. । " [2]

" सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हों,
सब शुभ पावें, न हो दुःखी कहीं कोई भी । " [3]

आदि अनेक सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग इस कृति में हुआ है.

संवाद-योजना

जयद्रथ-वध

" जयद्रथ-वध " में कवि ने नाटकीय संलापों के द्वारा वर्णन-शैली को सजीव बनाया है. जयद्रथ ने कहा

" गोविन्द अब क्या देर है, प्रण का समय जाता टला ।
शुभ-कार्य जितना शीघ्र हो, है नित्य उतना ही भला ।।[4] "

" सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गई,
गम्भीर श्यामल मेघ में विद्युच्छटा-सी छा गई ।
कहते हुए यों- वह न उनका भूल सकता वेश है-
हे पार्थ ! प्रण पालन करो, देखो, अभी दिन शेष है ।। " [5]

---

1. युद्ध, पृ. 21.
2. वही, पृ. 23.
3. वही, पृ. 53.
4. जयद्रथ-वध, पृ. 84.
5. वही, पृ. 84.

अवलोक सम्मुख पार्थ ने गुरु को प्रणाम किया कहा, आशीष दे आचार्य ने उनसे प्लुत स्वर में कहा-

" देकर परीक्षा आज अर्जुन ! तुष्ट तुम मुझको करो,
आओ, दिखाओ हस्त-कौशल, यह समर-सागर तरो । "
सुत-घातकों को देखते ही पार्थ मानो जल उठे,
सुख मार्ग से क्या स्वेष्ठ ही तो वे वहाँ न उबल उठे-
आचार्य ! मेरा हस्त- कौशल देख लेना फिर कभी,
अभिमन्यु का बदला तुम्हें लेकर दिखाना है अभी ।। "[1]

सैरन्ध्री

" सैरन्ध्री " में कीचक सैरन्ध्री को कहता है-

" अहा ! आज मैं आ जाऊँगा,
प्रत्यय देख तुझे प्रेयसी पा जाऊँगा । "

तब कृष्ण ने कहा कि -

" अँधेरे में कष्ट न होगा ' "[2]

तब कीचक कहता है-

" रौख में भी तेरे लिए जा सकता हूँ हर्ष से । "[3]

उपरोक्त संवाद से कीचक की कामवासना ही प्रकट हुई है.

वन-वैभव

जब गन्धर्वराज चित्ररथ कौरव-दल को विमानों से बाँध देते हैं. तब उनको बन्धनमुक्त करने के लिए अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा का स्वीकार करते हैं और उनसे लड़ने के लिए जाते हैं. उनको देखकर चित्ररथ ने कहा-

---

1. जयद्रथ-वध, पृ. 61.
2. सैरन्ध्री, पृ. 39
3. वही, पृ. 39

163

" मित्र, अच्छे आये इस काल,
देख लो निज रिपुओं का हाल ।
तुम्हारे कांटे ये विकराल ।
लिये हैं मैंने सभी निकाल ।
मिले थे सुरपुर में हम लोग,
आज फिर आया शुभ संयोग । "

तब पार्थ बोले -

" हुआ मैं आज अतीव कृतार्थ ।
यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ,
करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ,
किन्तु ये भाई हैं मेरे -
आप यों जिनको हैं घेरे ।
चित्ररथ बोले- कैसी- बात !
ज्ञात तो हैं इनके उत्पात ? "
कहा अर्जुन ने- " सब है ज्ञात,
विश्वम्भर में हैं वे विख्यात ।
किन्तु कहते हैं आर्य उदार
करेंगे उनका हमीं विचार । "

तब चित्ररथ ने कहा-

नहीं क्या मुझको यह अधिकार ? "
कहा अर्जुन ने उसी प्रकार -
" युद्ध में जाऊँ जब मैं हार । "
" चाहते हो तो यही सही । " 1

इसके बाद दोनों के बीच युद्ध का आरंभ होता है. दोनों के पास दिव्यायुद्ध है. अंतमें, अर्जुन की जीत हुई. तब अर्जुन, चित्ररथ को कहता है-

---

1. वन-वैभव, पृ. 35

164

" क्षमा करना मुझको हे मीत !
हार हो चाहे मेरी जीत,
कार्य था किन्तु न विधि-विपरीत ।
भाव अब भी हैं मेरे भव्य ।
कठिन ही होता है कर्तव्य । " [1]

तब चित्ररथ ने कहा --

" बिजलियाँ चमकीं बरसा मेह,
तृप्त ही हूँ मैं हे गुण-गेह ।
आत्मजय तुमने पाया है
शत्रु का शत्रु हराया है ! " [2]

वक संहार

" वक-संहार " के संवादों की भाषा नाटकीय है. इन संवादों में प्रभावमयता है. कुन्ती अपने पुत्रों के साथ ब्राह्मण के घर पर जाकर कहती है-

" थी शान्ति पूरे तौर से,
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,
गृहनाथ हैं ? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ हैं । " [3]

तब ब्राह्मणी ने कहा-

" आओ अहा ! हम सब विशेष सदाय हैं " [4]

ब्राह्मण, ब्राह्मणी और बालिका के बीच संवाद छिड़ता है. यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बलि के लिए कौन जाय ? तब माता कुन्ती अपने पुत्र को बलि के रूप में भेजने के लिए तैयार होती है. यह सुनकर युधिष्ठिर माता

---

1. वही [वन-वैभव] पृ. 37.
2. वही, पृष्ठ 37
3. वक-संहार , पृ. 8
4. वही, पृ. 8

165

को कहते हैं--

" माँ, यह क्या किया ?
पर हेतु मरने के लिए,
निज सुत, बिना अकधक किये,
किस भाँति भेजेगा तुम्हारा यह हिया ? "

तब माता ने कहा कि-

" यह हृदय ऐसा ही बना है क्या कहूँ ?
ऐसा जटिल, पूछूँ किसे,
विधि ने बनाया क्यों इसे,
अबला रहूँ मैं और हा ! सब कुछ सहूँ । " [1]

यहाँ पर जीवन की करुणता ही प्रकट हुई है.

द्वापर

" द्वापर " में भी नाटकीयता मिलती है.

आत्मसंलाप

" आया नहीं विलासी अब भी
बस ये आँसू आये,
अहा ! उसी लावण्य-सिन्धु का
रस ये आँसू लाये ।
पी पीकर मैं इन्हें, भाग्य को
अब भी कैसे कोसूँ ?
पर अजान इस आतुर उर को
कब तक पालूँ- पोसूँ ?
आई रात, हुआ चन्द्रोदय,
मैंने यही विचारा-

1. वक-संहार, पृ. 35.

वह शशि है, मैं निशि होऊँगा !

वह तमिस्र मैं तारा ! "[1]

नहुष

" नहुष " में वर्णित नारद-नहुष संवाद का उद्देश्य सिद्धान्त पोषण है.

नहुष इन्द्रासन की प्राप्ति के बाद भी असन्तुष्ट रहता है. वह तो कुछ काम करना ही चाहता है.

" फल से क्या, उत्सुक मैं कुछ कर जाने को ।

तब नारद ने कहा-

" वीर, करने को यहाँ स्वर्ग-सुख भोग ही,
जिसमें न तो है जरा-जीर्णता न रोग ही ।
साधन बड़ा है, किन्तु साध्य ही के अर्थ है,
अन्यथा प्रवृत्ति-पथ सर्वथा ही व्यर्थ है. । "[2]

नहुष बोला-

" समृद्धि स्वर्ग तक ही ?
स्वर्ग जो न हो तो क्या ठिकाना है नरक ही ? "[3]

नारद जी नहुष को कहते है कि इन्द्र पद की प्राप्ति कोई साधारण चीज नहीं है. वैसे तो मनुष्य को जीते जी स्वर्ग नहीं मिल सकता है. नहुष को सदेह स्वर्ग प्राप्त हुआ है. यह बात बड़े गौरव की है. तब अंतमें नहुष कहता है -

" मैं अनुगृहीत हुआ आज यह सुन के,
देव, यहाँ सारे काम-काज देखता हूँ मैं,
निज को अकेला-सा तथापि देखता हूँ मैं । "[4]

---

1. द्वापर, पृ. 109
2. नहुष, पृ. 25
3. वही, पृ. 25
4. वही, पृ. 29.

167

अंतमें, नहुष की ग्लानि मिट जाती है. तब नारद कहते हैं-

" ज्ञाता है अधिक मेरा मन ही स्वकर्मों से ; [1]

" नहुष " में शची और सखी, उर्वशी-नहुष आदि के भी सुंदर संवाद मिलते हैं.

जय भारत

" जय भारत " के युद्धांश का संवाद कार्य प्रेरक है. निम्न संवाद में व्यंग को प्रधानता दी गई है.

बोला क्रुद्ध कर्ण- " स्वयं सूत बना, तो भी तू
लज्जित क्यों होता नहीं ओछी बात कहते ?
मैंने तो कहा था यही उनसे- " मैं द्विज हूँ "
यह छल है या सत्य " अश्वत्थामा हत हो गया ।
ओहो ! अब जाना, ज्येष्ठ पार्थ पर तेरी ही
छाया यहाँ आ पड़ी थी । " [2]

हिडिम्बा

भीम हिडिम्बा को देखकर कहता है-

" देवि, कौन है तू यहाँ ? " बोले हँस धीरे-से ।
जागें नहीं कच्ची नींद माता और भ्राता ये,
आपत्कष्ट में भी शरणागतों के त्राता ये । "

तब हिडिम्बा ने इसका प्रत्युत्तर इस प्रकार दिया-

" धन्यवाद ! देवी पद दान किया तुमने,
वस्तुत: मैं राक्षसी हूँ, मान दिया तुमने ।
स्वीकृत इसी लिए मैं करती हूँ इसको,
अन्यथा मैं अपने समक्ष गिनूँ किसको ? " [3]

---

1. नहुष, पृ. 30
2. जय भारत, पृ. 389
3. हिडिम्बा, पृ. 13

भीम ने हिडिम्बा को पूछा कि -

" तो आलाप करता हूँ मैं क्या वन देवी से ?
देवी ही सही मैं, तब मेरे देव तुम हो,
कामलता हूँ मैं, तुम्हीं मेरे कल्पद्रुम हो । " [1]

भीम ने हिडिम्ब का वध किया. बादमें भीम ने कहा-

" भगिनी भी संग जायगी क्या भाई के ? "

तब हिडिम्बा ने कहा-

" प्रस्तुत मैं,प्यार किया मैंने जिसे एक बार,
उसके करों से मरना भी मुझे अंगीकार । " [2]

यहाँ संवाद से भाषा को अनुपम दीप्ति प्राप्त हुई है.

युद्ध - भीष्म पितामह और पार्थ का यह संवाद अत्यन्त संवेदनापूर्ण है-

सस्मित उन्होंने कहा- " कोई उपधान दो । "
लाये गये शीघ्र वे उन्हीं के रिक्त रथ से ।
खिन्न हो उन्होंने कहा- दूर करो इनको । "
पार्थ को पुकार बोले- " वत्स,उपधान दो, "
" जो आज्ञा " तुरन्त तीन बाण छोड़ वृद्ध के
मस्तक के नीचे खड़े कर दिये पार्थ ने ।
ऊँची उठी ग्रीवा, कहा तुष्ट पितामह ने-
" योग्य उपधान यही मेरी इस शय्याके
जीते रहो वत्स, तुम " तात,, तुम्हें मार के
जीना अभिशाप ही है, " पार्थ चुप हो गये । " [3]

रस-योजना

जयद्रथ-वध

" भावों का संबंध रसों से है. भारतीय काव्यशास्त्र में भाव की चरम

1. हिडिम्बा,पृ.14

2. वही,पृ.24

3. युद्ध,पृ.9-10

परिणति को रस कहा जाता है और रसों की संख्या साधारणतः नौ मानी जाती है. नौ रसों में भी श्रृंगार, वीर, शान्त और करुण का संबंध जीवन के अधिक प्रबल और उपयोगी भावों से हैं. अतः वे प्रमुख हैं. " [1] गुप्तजी ने इन चार रसों को प्रधानता दी है और शेष रसों को गौण स्थान दिया है.

" जयद्रथ-वध " में रौद्र रस का चित्रण हुआ है.

" श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे ।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े, "
करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े ।। " [2]

यहाँ कौरव और उनके सहायक आलम्बन हैं, अर्जुन आश्रय है. अर्जुन का हाथ मलना, खड़े हो जाना उनके आरक्तनेत्र आदि अनुभाव हैं. कृष्ण के वचन और अभिमन्यु की मृत्यु आदि उद्दीपन हैं. और गर्व और आवेग संचारी हैं. यहाँ रस के संपूर्ण अवयवों का संयोजन मिलता है.

" जो प्रण किया है पार्थ ने सुत-शोक के सन्ताप से,
हे कुरुकुलोत्तम ! क्या अभी तक वह छिपा है आपसे ?
मारुँ जयद्रथ को न कल मैं तो अनल में जल मरुँ,
की है यही उसने प्रतिज्ञा, अब कहो मैं क्या करुँ ?
कर्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है,
भय और चिन्ता युक्त मेरा जल रहा सब गात है ।
अतएव मुझको अभय देकर आप रक्षित कीजिए,
या पार्थ- प्रण करने विफल अन्यत्र जाने दीजिए ।। " [3]

इस छंद में भयानक रस के सभी अवयव विद्यमान हैं. किन्तु भयानक के

1. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकांत, पृ. 60
2. जयद्रथ-वध, पृ. 36
3. वही, पृ. 41

170

चित्रण में भय का स्पष्ट कथन [भय और " चिन्ता-मुक्त आदि पंक्ति में] दोष है. इसलिए श्री कन्हैयालाल पोद्दार और पं. रामदहिन मिश्र ने क्रमशः काव्य कल्पद्रुम और काव्य दर्पण में भयानक रस के निदर्शन- स्वरुप उपर्युक्त पंक्तियों में से अंतिम चार को उद्धत करते समय " भय और चिन्ता-मुक्त " में " भय और के स्थान पर कुरुराज शब्द का प्रयोग किया है. । " [1] जिससे कि पूर्वोल्लिखित दोष का परिहार हो जाता है- अन्यथा वह मूल पाठ नहीं है । "[2]

" मैं हूँ वही जिसका हुआ था ग्रन्थि-बन्धन साथ में,
मैं हूँ वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ में,
मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्द्धांगिनी,
भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिरसंगिनी ।। " [3]

यहाँ अभिमन्यु का शव आलम्बन तथा उत्तरा आश्रय है. पति की सुंदरता, वीरता तथा प्रेम का स्मरण आदि उद्दीपन है. चिन्ता, दैन्य आदि संचारी तथा उत्तरा का विलाप अनुभाव है. इन सबसे परिपुष्ट स्थायी भाव शोक की करुणरस में परिणति होती है.

सैरन्ध्री

रसाभास अनुचित, अनैतिक और अनुपयुक्त संबंधों पर आधारित है. गुप्तजी इनके विरोधी हैं. फिरभी उनका काव्य अनुचित और अनैतिक भावों से अछूता नहीं रहा है. गुप्तजी के काव्य में भी रसाभास मिलता है-

" हे अनुपम आनन्द-मूर्ति, कृशतनु, सुकुमारी,
बलिहारी यह रुचिर रुप की राशि तुम्हारी !

1, काव्य-कल्पद्रुम [प्रथम भाग] - श्री कन्हैयालाल पोद्दार, पृ. 225.
2. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकांत, पृ. 71
3. जयद्रथ-वध, पृ. 25.

171

क्या तुम हो इस योग्य, रहो जो बनकर चेरी,
सुध-बुध जाती रही देखकर तुमको मेरी ।
इन दृग्बाणों से बिद्ध यह मन मेरा जब से हुआ,
है खान-पान-शयनादि सब विष-समान तब से हुआ । "[1]

यहाँ द्रौपदी और कीचक आलंबन और आश्रय हैं. द्रौपदी का सौन्दर्य, सौकुमार्य और एकान्त स्थान उद्दीपन है. हर्ष, आवेग, व्यंग्य आदि संचारी है. " क्या तुम हो इस योग्य, रहो जो बनकर चेरी " में व्यंग्य संचारी हैं. उनके वचन और द्रौपदी को देखना आदि अनुभाव हैं. लेकिन यहाँ पर श्रृंगार रस नहीं है, रसाभास है. इसका कारण यह है कि कीचक का द्रौपदी के प्रति प्रेम अनैतिक कार्य है. कीचक के लिए वह पर स्त्री है.

वन-वैभव

निम्न छंद हास्य रसाभास का उदाहरण है-

" तुम्हारे भाई बेचारे,
जुए में जो सबकुछ हारे,
विपिन में दीन भाव धारे,
भटकते हैं मारे मारे ।
न जानें कैसे हैं वे लोग,
यहाँ हम करते हैं सुख-भोग ।
खबर लें उनकी, चलो जरा,
कि वन में होगा हृदय हरा । "

× × ×

" विकट यह तीन तिकट मिल के,
हँसा फिर खिलखिलकर खिल के "[2]

---

1. सैरन्ध्री, पृ. 26
2. वन-वैभव, पृ.3-4

वक-संहार

" वक-संहार " करुण रस का काव्य है फिरभी इसमें वात्सल्य, प्रेम, उत्साह आदि मनोभावों की व्यंजना हुई है. यह उदाहरण वात्सल्य मनोभाव का है.

" अच्छा रहो, यह तो सुनो,
तुम कौन सुत दोगी ' चुनो,
दोगी तथा कैसे सुनूं यह तो अभी ' "
हे विप्रवर, पूछो न यह
कुन्ती सकी आगे न कह ।
द्विज-पुत्र घुटनों में लिपट कर था खड़ा ।
उसको उठाकर गोद में,
मुँह चूम करुणाऽमोद में
बोली कि- मेरे वत्स, तू बन जा बड़ा । " [1]

यह उदाहरण वात्सल्य मनोभाव का है.

नहुष

" आज मैं विदेशिनी हूँ अपने ही देश में,
वन्दिनी-सी आप निज निर्मल निवेश में । " [2]

इन्द्र स्वर्भ्रष्ट होते हैं तब राजा नहुष को इन्द्र पद दिया जाता है. उस समय इन्द्राणी बहुत दुःखी हो जाती है. इस छंद में वर्णित इन्द्र का पराभव आलंबन है. इन्द्राणी आश्रय है. मानव इन्द्र बनता है जिससे स्वर्ग भी पराधीन हो जाता है. यहाँ स्वर्ग की पराधीनता उद्दीपन हैं. ग्लानि, चिन्ता, विषाद आदि संचारी हैं. उच्छ्वास, विवर्णता तथा इन्द्राणी का वचन अनुभाव हैं. इसप्रकार इस छंद में करुणरस की परिपति हुई है.

1. वक-संहार, पृ. 28-29

2. नहुष, पृ. 17.

जय भारत

" जय भारत " में श्रृंगार, रौद्र, करुण, बीभत्स आदि रसों का वर्णन हुआ है.

अरे पापी, तुझको तो मैं
व्योम में रसातल में खोजकर मारता,
भाग्य से तू भू पर ही मिल गया मुझको । " [1]

इस छंद में भीम और दुःशासन आश्रय-आलम्बन है. दुःशासन के पूर्वकृत्य उद्दीपन है. भीम की भौंहें और उनके फूले हुए नथने अनुभाव हैं. भीम दुःशासन पर प्रहार करता है और उनका कठोर भाषण आदि भी अनुभाव है. उनकी उग्रता और स्मृति संचारी है. इस छंद में रौद्र रस के संपूर्ण अवयवों का चित्रण किया गया है.

श्रृंगार रसाभास

" लेकर सुख की साँस स्वस्थ थी आगतपतिका वनिका,
चौमासे भर तक चिन्ता से मुक्त हुई वह वनिका । " [2]

शास्त्रीय दृष्टि से भाव-कोटि-साधारणतः विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रस निष्पन्न होता है. लेकिन जहाँ किसी के अभाव के कारण रस निष्पन्न नहीं होता है वहाँ रस- दशा नहीं बल्कि भाव-दशा मानी गई है.

हिडिम्बा

इस काव्य में श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है.

" सुन्दरि, क्या सत्य ही तू कोई अन्य बाला है ?
रूप से जो ज्वाला और वाणी से रसाला है । "
मैं हूँ हँस बोली वह- " जो भी तुम जान लो,

---

1. जय भारत, पृ. 394
2. वही, पृ. 183.

174

हानि क्या मुझे यदि निशाचरी ही मान लो ?
कल्प-सा किया है स्वयं मैंने निज काया का,
यातुधानी हूँ न, योग रखती हूँ माया का । "
तो तू अपने को भले- शूर्पणखा मान ले,
लक्ष्मण-सा धीर मैं नहीं हूँ, यह जान ले ? "
शूर्पणखा तक ही तुम्हारा बड़ा ज्ञान है,
वे हो तुम, जिसमें अतीत ही महान है । " [1]

नायक और नायिका आलम्बन है. एक-दूसरे को देखना अनुभाव है. नायक-नायिका दर्शन, बातचीत आदि बाह्य इन्द्रियों द्वारा जो आनंद लूटते हैं उसे संयोग श्रृंगार कहा गया है.

युद्ध

" लाल लाल भूमि सब ओर विकराल थी,
दीखे रक्त-कर्दम में हाथी भी अशक्त-से ।
कट कर शीश गिरराहु- से उदित थे,
केतु-से कटे भी बाहु भय उपजाते थे ।
कर्तित थी कन्धराएँ, नर्तित कबन्ध थे ।
टूटे रथ आँते- सी बिखेर कर अंगों की,
तड़प रहे थे जन्तु शीघ्र मर जाने को ।
हड़प रहे थे स्यार गीध शव नोंच के,
सो गये थे शत्रु- मित्र भूमि पर साथ ही । " [2]

मुर्दों की हड्डी, मांस आदि आलंबन. शव के अंगों को गीध द्वारा नोंचना उद्दीपन है. रणभूमि के इस दृश्य के बारे में सोचना अनुभाव है. यह बीभत्स रस का उदाहरण है.

---

1. हिडिम्बा, पृ. 14-15
2. युद्ध, पृ. 6

बिम्ब-विधान

जयद्रथ-वध

" जिस भाँति विद्युद्दाम से होती सुशोभित घन-घटा,
सर्वत्र छिटकाने लगा वह समर में शस्त्रच्छटा । " [1]

जब आकाश में बिजली होती है तब आकाश सुशोभित हो जाता है वैसे ही समर में अभिमन्यु के शस्त्र चमकने लगे. यहाँ आकाश और समर का और विद्युतघटा और अभिमन्यु के शस्त्रों का बिम्ब उपस्थित हुआ है.

सैरन्ध्री

" निकल रहा था वक्ष वीर का आगे तन कर,
पर्वत भी पिस जाय, अड़े जो बाधक बन कर ।
दक्षिण-पद बढ़ चुका, वाम अब बढ़ने को था,
गौरव-गिरि के उच्च शृंग पर चढ़ने को था ।
मद नेत्रों में दर्प का, मुख पर थी अरुणच्छटा,
निकला हो रवि ज्यों फोड़ कर, युगल गजों की घन घटा । " [2]

सैरन्ध्री ने भीम-गज-युद्ध का एक चित्र खींचा था. यहाँ भीम की वीरता का वर्णन करते हुए एक सुंदर बिम्ब उपस्थित किया है.

वन-वैभव

कौरव-दल वन में आता है. उस रात की प्रकृति का वर्णन करते हुए कवि ने एक बिम्ब उपस्थित किया है.

" चाँदनी छिटकी थी उस रात,
विचरता था वासन्तिक वात ।
सो रहे थे यद्यपि जलजात,
अयुतशशि थे सर में प्रतिभात ।

1. जयद्रथ-वध, पृ. 15

2. सैरन्ध्री, पृ. 18

176

सरस सर की निहार शोभा,
सुरों का मानस भी लोभा । " [1]

वक-संहार

ब्राह्मण- परिवार में शोक की घटा छा गई थी तब कुन्ती के प्रवेश से उसमें विद्युत- सा प्रकाश फैल जाता है.

" थी शोक की छाई घटा,
उसमें उठी विद्युच्छटा ।
रोते हँसे, हँसते हुए रोये सभी ।
तब ब्राह्मणी ने सिर धुना,
वह शब्द कुन्ती ने सुना ।
वह वायु-गति से आप आ पहुँची तभी । " [2]

द्वापर

यहाँ धरती का एक सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत है -

धात्री वह गो-रुप-धारिणी,
शस्य-शालिनी, धरणी,
लोक-पालनी वह भव भव की
भार वाहिनी, भरणी ।
सर्वसहा, क्षमा-क्षमता की,
ममता की वह प्रतिमा,
खुली गोद उसकी जो आवे,
समता की वह प्रतिमा । " [3]

---

1. वन-वैभव, पृ. 22
2. वक-संहार, पृ. 20
3. द्वापर, पृ. 42

नहुष

यहाँ कवि ने शची का वर्णन करते हुए एक बिम्ब को प्रस्तुत किया है-

" दिव्यगति लाघव सुरांगनाओं ने धरा,
स्वर्ग में सुगौरव तो है शची से ही भरा ।
देह धुली उसकी या गंगाजल ही धुला ।
चाँदी धुलती थी जहाँ, सोना भी वहाँ धुला ।
मुक्ता-तुल्य बूँदें टपकी जो बड़े बालों से,
चू रहा था विष या अमृत वह कालों से ' " [1]

जय भारत

महाराज शान्तनु योजनगन्धा की दिव्य सुरभि को सूँघते हैं और मुग्ध हो जाते हैं. उसकी सुगन्धि से महाराज शान्तनु में स्फूर्ति उत्पन्न होती है. यहाँ घ्रातव्य बिम्ब है.

" लेकर दिव्य-सुगन्धि, एक दिन शीतल मन्द समीर चला ।
चौंक पड़े वे उसे सूघकर, हुई ऊँघ-सी उनकी दूर ।। " [2]

डा० नगेन्द्र के अनुसार " विश्व काव्य में घ्रातव्य बिम्ब अत्यंत अल्प मात्रा में प्राप्त होते हैं. कीटस जैसे कवि के काव्य में भी जिसका ऐन्द्रिय संवेदन अत्यंत प्रखर था. इस प्रकार के उदाहरण दो ही चार मिलते हैं और उनका ग्रहण भी सर्वसुलभ नहीं है. " [3] इस दृष्टि से इस काव्य का महत्व और भी बढ़ गया है.

हिडिम्बा

निम्न पद्य घ्रातव्य बिम्ब का उदाहरण है. जिसमें हिडिम्बा के सौन्दर्य

---

1. नहुष, पृ. 44
2. जय भारत, पृ. 31
3. काव्य बिम्ब- डा० नगेन्द्र, पृ. 9

का वर्णन है.

" उत्थित वसुन्धरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमयी राका थी ।
अंग मानो फूल, कच भृंग, हरी शाटिका,
कर-पद-पल्लवा थी जंगम-सी वाटिका ।
ओस मुसकान बन ओठों पर आई थी,
सुरभि- तरंग वायु-मण्डल में छाई थी ।। " [1]

युद्ध

पितामह ने कर्ण के बारे में कहते हुए एक सुन्दर बिम्ब को उपस्थित किया है-

" धन्य वह जननी, अपूर्व रत्न-खननी,
धन्य पुरुषार्थ तेरा, मानो स्वयं दैव भी
दमन न कर पाया तेरा दृढ़ दर्पका । " [2]

अलंकार- विधान

" अलंकार काव्य के शब्द और अर्थ (भाषा के अन्तरंग बहिरंग) पुरुष दोनों की सुन्दरता है. शब्द और अर्थ दोनों ही भाषा के अन्योन्याश्रित तत्व हैं. " [3] " अलंकारों को अभिधा का प्रकार विशेष माना गया है " [4]

" अभिधा प्रकार-विशेषा एव अलंकारा: प्रताप रुद्रीय । " [5]

---

1. हिडिम्बा, पृ. 12-13
2. युद्ध, पृ. 12
3. काव्यश्री (भाग-2) डा० सुधीन्द्र- पृ. 9
4. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य-कमलाकांत पाठक, पृ. 685
5. काव्य-दर्पण- रामदहिन मिश्र, पृ. 324.

अलंकार मुख्यत: वाच्यार्थ के विषय होते हैं, व्यंग्यार्थ के नहीं. जहाँ व्यंग्यार्थ से वाच्यार्थ की प्रधानता या समानता रहती है, वहाँ व्यंग्य गुणीभूत हो जाता है. वाच्यार्थ में यह चमत्कार अलंकार के द्वारा उत्पन्न होता है . "[1] अर्थात काव्य में अलंकारों से सौन्दर्य बढ़ता है.

व्यतिरेक

" यह पार्थनन्दन पार्थ से भी धीर वीर प्रशस्त है ! " [2]

शाब्दी अपह्नुति

" हाँ देखकर लज्जित जिन्हें काश्मीर कुंकुम- क्यारियाँ,
थीं ठौर ठौर विहार करती सुन्दरी सुर नारियाँ ।
सबके मुखों पर छा रही थी हर्ष की दिव्य-प्रभा,
मानों असंख्य सुधारकों की थी वहाँ शोभित सभा ।। " [3]

अक्रमातिशयोक्ति

" वह शर इधर गांडीव- गुण से भिन्न जैसे ही हुआ,
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ । " [4]

अर्थान्तरन्यास

" सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया,
फल योग्य ही हे पुत्र, उसका शीघ्र हमने पा लिया ।
परिणाम को सोचे बिना जो लोग करते काम हैं,
वे दुःख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम है ।। " [5]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक, पृ. 685.
2. जयद्रथ-वध, पृ. 16
3. वही, पृ. 51-52
4. वही, पृ. 86.
5. वही, पृ. 28

180

सन्देह

" सौभद्र पर सौ बाण छोड़े जो अतीव कराल थे,
आ ! बाण थे वे या भयंकर पक्षधारी व्याल थे ।। " [1]

विशेषोक्ति

" हैं व्यग्र सुनने को श्रवण पर श्रव्य सुन पाते नहीं,
दृग दीन हैं पर दृश्य फिरभी दृष्टि में आते नहीं ।। " [2]

" हा नेत्र-युत भी अन्ध हूँ, वैभव-सहित-भी दीन हूँ,
वाणी-विहित भी मूँक हूँ, पद-मुक्त भी गतिहीन हूँ ।
हे नाथ घोर विडम्बना है आज मेरी चातुरी,
जीती हुई भी तुम विना मैं हूँ मरी से भी बुरी ।। " [3]

यहाँ " विशेषोक्ति " उत्तरा की असहायावस्था को प्रभावपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है. कवि ने प्रसंगवश अतिशयोक्तिमूलक अलंकारों का इस प्रकार नियोजन किया है कि दृश्य चल चित्रों की रील के समान क्षिप्र गति से मानव-चक्षुओं के सम्मुख उभरते मिलते हैं-

" वह शर इधर गाण्डीव-गुण से भिन्न जैसे ही हुआ,
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ । " [4]

दोनों रथी इस शीघ्रता से थे शरों को छोड़ते,
जाना न जाता था कि वे कब थे धनुष पर जोड़ते । " [5]

उपमा

" जान पड़ा वह राजभवन गिरि-गुहा सरीखा,
उसमें भीषण हिंस्त्र-जन्तु-सा उसको दीखा ।

---

1. जयद्रथ-वध, पृ. 13
2. वही, पृ. 70
3. वही, पृ. 26
4. वही, पृ. 86
5. वही, पृ. 62

वही चकित मृगी-सी रह गई आँखें फाड़ बड़ी बड़ी,
पर-कटी पक्षिणी व्योम को देखे ज्यों भू पर पड़ी । "[1]

अंत्यानुप्रास

" धरा को धसका कर मातंक,
बढ़े दिखलाकर निज गति-रंग ।
उड़ा कर उसकी धूल तुरंग,
चले ज्यों चपल अपांग सभ्रंग ।
भूमि पर संकर-सा आया,
उसे ऊँटों ने उकसाया । "[2]

उत्प्रेक्षा

" परितृप्त गृह-सुख-भोग से,
मन्त्र-स्वरों के योग से,
मानो भुवन की भावना था हर रहा । "[3]

" थे शास्त्र अब भी सीखते,
माँ- युक्त थे यों दीखते-
प्रत्यक्ष मानो पच्च मख थे, पूर्ति युत । "[4]

यमक

" उसे नाथ कर सबको उसने
किया सनाथ सहज में । "[5]

---

1. सैरन्ध्री, पृ. 8
2. वन-वैभव, पृ. 6
3. वक-संहार, पृ. 7
4. वक-संहार, पृ. 8
5. द्वापर, पृ. 156
6.

182

परम्परित रुपक

" उसी पूर्व की फटती पौ में,
उसी हँस की नलिनी । "[1]

शाब्दी अपह्नुति

" वे दो ओठ न थे राधे, था
एक फटा उर तेरा । " [2]

परिकर

इस अलंकार में विशेषण का प्रयोग ~~हुआ~~ क्रिया के अनुरुप होता है.

" किन्तु विरह- वृश्चिक ने आकर
अब यह मुझको घेरा,
गुणी-गारुड़िक, दूर खड़ा तू
कौतुक देख न मेरा । " [3]

एकावली

एकावली में अनेकार्थों की श्रृंखला स्थापित हो जाती है.

" वृन्दावन में नव मधु आया,
मधु में मन्मथ आया,
उसमें तन, तन में मन मन में
एक मनोरथ आया । " [4]

व्यतिरेक

" ज्ञानयोग से हमें हमारा
यही वियोग भला है,
जिसमें आकृति,प्रकृति,रुप,गुण,
नाट्य,कवित्व, कला है । " [5]

------- --------

1. द्वापर, पृ. 109
2. वही, पृ. 102
3. वही, पृ. 112
4. वही, पृ. 133
5. वही, पृ. 127

विभावना

" किन्तु आज आकुल है वन में
जैसी वह ब्रजरानी,
दासी ने घर बैठे उसकी
मर्म-वेदना जानी " [1]

लोकन्यायमूलक अलंकार

अतद्गुण

" राधा हरि बन गई, हाय ! यदि
हरि राधा बन पाते,
तो उद्धव, मधुवन से उलटे
तुम मधुपुर ही जाते । " [2]

विशेषण- विपर्यय

गुप्तजी के काव्य में विशेषण-विपर्यय के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं. इसके उदाहरण हमें " नहुष " काव्य में मिलते हैं. उर्वशी नहुष को कामोपयोग के लिए निमन्त्रण देती हुई कहती है-

" आपमें हमारा काम आज मूर्तिमन्त है ।
चलिए न, नन्दन में उत्सुक वसन्त है । " [3]

अनुप्रास

" इन्द्र होके भी मैं गृहभ्रष्ट- सा यहाँ रहा,
लाख अप्सराएँ रहें, इन्द्राणी कहाँ अहा !
ऊलती तरंगों पर झूमती-सी निकली ।
दो दो करी- कुम्भी यहाँ हूलती-सी निकली । " [4]

---

1. द्वापर, पृ. 108
2. वही, पृ. 126
3. नहुष, पृ. 37
4. वही, पृ. 43

श्लेष

" बोला वह - जो हो तुम गुरुजन अन्ततः,
मारूँ क्या तुम्हें मैं, उपकार में लो हार ही " [1]

" जय भारत " में उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टांत, रुपक आदि अलंकारों को प्रधानता दी गई है .

आरोपमूलक अलंकार

" उत्थित वसुन्धरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमती राका थी । " [2]

उपमा

" आँधी-सा घटोत्कच तो आकर चला गया,
कर्ण था अटूट शर-धारा का प्रपात-सा,
सामने जो आया, वही डूबा- बहा उसमें ! " [3]

" लक्ष्मण- समान सब मेरे पुत्र हैं कहाँ ?
जब मैं पड़ा हूँ यहाँ जीवित नरक में । " [4]

इससे स्पष्ट है कि गुप्तजी का काव्य अलंकारहीन नहीं है. उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों को स्थान दिया है. " इसीलिए उनकी रचना अलंकार भूषित तो हैं किन्तु अलंकार मुखर नहीं. यहाँ पर यह भी उल्लेख है कि आलोच्य कवि के अलंकरण के उपकरणों का क्षेत्र अधिकांश आधुनिक कवियों के समान परिमित नहीं है. वरन् उनमें जीवन व्यापी विस्तार मिलता है जो उसे सूर, तुलसी, प्रभृति साहित्यिक महारथियों की समकक्षता प्रदान करता है. " [5]

---

1. जय भारत, पृ. 380
2. हिडिम्बा, पृ. 12
3. युद्ध, पृ. 30
4. वही, पृ. 38
5. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- डा० उमाकान्त, पृ. 282

कमलाकांत पाठक के शब्दों में हम कह सकते हैं – " गुप्तजी अलंकारवादी कवि नहीं है पर भावोत्कर्ष साधन की पद्धति के अतिरिक्त अलंकार साधन की पद्धति भी उनकी काव्य-रचना में कहीं कहीं प्रकट हुई है. नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की अलंकार योजना का उन्होंने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है. " [1]

छन्द-विधान

मैथिलीशरण गुप्त ने वर्णिक और मात्रिक, सम और विषम सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है. किन्तु उनके काव्य में मात्रिक और सम का अधिक प्रयोग मिलता है. गुप्तजी ने नए पुराने, संस्कृत और हिन्दी गण-वृत्त, अक्षर-वृत्त, मात्रिक वृत्त आदि सभी में काव्य रचना की है. उन्होंने प्रचलित छंदों के साथ साथ नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं.

मैथिलीशरण गुप्त के " काव्य में गीतिका, हरिगीतिका, दोहा, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित, मालिनी, शिखरिणी, श्रृंगार, पीयूषवर्ष, सुमेरु, पदपादाकुलक, वियोगिनी, वीर और रोला तथा छप्पय आदि हिन्दी के सभी प्रसिद्ध छंद व्यवहृत है. " [2]

जयद्रथ-वध

" जयद्रथ-वध " हरिगीतिका में लिखा गया है. इसका प्रत्येक चरण 28 मात्राओं का होता है. इस छंद में यति सोलहवीं मात्रा पर और पादांत में पड़ती है. और अंत में लघु-गुरु होते हैं.

" अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है ।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक, पृ. 693.
2. मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, उमाकान्त, पृ. 320

इस तत्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ । "[1]

" सैरन्ध्री " छप्पय-पद्धति में लिखी गयी कृति है. छप्पय में पहले चार चरण " रोला " के और अंतिम दो चरण " उल्लाला " के होते हैं.

" जब विराट के यहाँ वीर पाण्डव रहते थे,
छिपे हुए अज्ञात-वास-बाधा सहते थे ।
एक बार तब देख द्रौपदी की शोभा अति
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति ।
यों प्रकट हुई उसकी दशा दृग्गोचर कर रुपवर,
होता अधीर ग्रीष्मार्त्त गज ज्यों पुष्करिणी देखकर । "[2]

" वन-वैभव " षोडशमात्रिक छंद में लिखा गया है -

" चाँदनी छिटकी थी उस रात,
विचरता था वासन्तिक वात ।
सो रहे थे यद्यपि जलजात,
अयुतशशि थे सर में प्रतिभात ।
सरस सर की निहार शोभा,
सुरों का मानस भी लोभा । "[3]

" बक-संहार " में सरस छंद की योजना हुई है.

" वह विप्र का परिवार था,
शुचि लिप्त घर का द्वार था,
पूजा प्रसूनाकीर्ण थी दृढ़ देहली ।
आगत अतिथियों के लिए,
शीतल पवन सुरभित किये,

---

1. जयद्रथ-वध, पृ. 5
2. सैरन्ध्री, पृ. 4
3. वन-वैभव, पृ. 22.

मानों प्रथम ही थी पड़ी पुष्पाञ्जली । "[1]

" द्वापर " में कवि ने सार, ताटंक, मरहठामाधवी आदि छंदों का प्रयोग किया है.

ताटंक 30 मात्रा का छंद है. इस की 16, 14 मात्रा पर यति पड़ती है. अन्त में तीन गुरु ‖ मगण ऽऽऽ ‖ होने चाहिए.

पानी है तो बरसेगा ही,
है जो आग, लगेगी ही,
जो समीर है सरसेगा ही,
है जो ज्योति, जगेगी ही । "[2]

" मरहठामाधवी " 29 मात्रा का छंद है. इसकी सोलहवीं मात्रा पर यति पड़ती है और अन्त में लघु- गुरु रहते हैं.

मुरली है अपूर्व असि उसकी,
विजयी है वह प्रेम का,
वह गो-धन का धनी, हाथ है
उस उदार का हेम का,
शिखि-शेखर को ध्यान सदा है,
सबके योग-क्षेम का । "[3]

" नहुष " में घनाक्षरी, मैथिली आदि छंद का प्रयोग हुआ है. इस खण्ड काव्य में गुप्तजी ने घनाक्षरी के द्वितीय अर्द्धचरण ‖ 8+ 7 वर्ण, अंत ऽऽऽ या ।।ऽ या ऽ । ऽ ‖ के लयाधार पर निर्मित छंद का प्रयोग हुआ है. " नहुष " में इस छंद का प्रयोग कवि ने युग्मकों के रुप में किया है. " यह छंद प्रबन्धधारा के अनुकूल पड़ता है, जबकि घनाक्षरी छंद प्रतिकूल पड़ता है "[4]

---

1. वक-संहार, पृ. 6
2. द्वापर, पृ . 57
3. वही, पृ. 49
4. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना- डा० पुत्तलाल शुक्ल,पृ. 165

188

" ऊलती तरंगों पर झूलती सी निकली,
दो- दो करी कुंभी यहाँ हूलती सी निकली,
क्या शक्रत्व मेरा जो मिली न शची भामिनी,
बाहर की मेरी सखी भीतर की स्वामिनी,
आह ! कैसी तेजस्विनी, आभिजात्य अमला,
निकली सुनीर से यों, क्षीर से ज्यों कमला । " [1]

"जय भारत " के प्रत्येक सर्ग में नया छंद ग्रहण किया गया है. मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है. अर्थात्, कवि ने अपने वक्तव्य के अनुसार छंद में परिवर्तन किया है. " जय भारत " की छंद रचना इस प्रकार है. -

मंगलाचरण दोहा छंद में लिखा गया है. घनाक्षरी- उत्तर- चरणार्द्ध में नहुष, रुपमाला में यदु और पुरु, योजनागंधा ताटंक और वीर छंद में लिखा गया है. सरसी के चरणांत में गुरुवर्ण के योग से नव्व छंद सृष्टि में कौरव- पाण्डव ताटंक में बंधु-विद्वेष, सरसी में एकलव्य, दिग्पाल में परीक्षा, ताटंक में याज्ञसेनी, रास में लाक्षागृह, घनाक्षरी उत्तर चरणार्द्ध में हिडिम्बा, सरस छंद की स्वच्छंद योजना वक-संहार में हुई है. पादाकुलक छंद में लक्ष्य-वेध, घनाक्षरी उत्तर-चरणार्द्ध में इन्द्रप्रस्थ, चान्द्रायण में वनवास, सरसी में राजसूय शीर्षक लिखा गया है. वीर और ताटंक द्यूत, रास में वनगमन, संपदा छंद में अस्त्र-लाभ, वक- संहार में प्रयुक्त इक्कीस मात्राओं में सरस का विस्तार तीर्थयात्रा . सार-छंद में द्रौपदी और सत्यभामा शीर्षक लिखा गया है. वन-वैभव गोपी और श्रृंगार में, दुर्योधन का दुःख उपजातिवृत्त में, वनमृगी रास छंद में, जयद्रथ सार छंद में, अतिथि और आतिथेय चौपाई में, यक्ष पादाकुलक छंद में, अज्ञातवास पद्धरि छंद में, सैरन्ध्री छप्पय में लिखा गया है. वीर और ताटंक में बृहन्नला, वसंततिलका में उद्योग, शिखरिणी छंद में विदुर- वार्ता, हरिगीतिका छंद में

---

1. नहुष, पृ. 25-26

189

रण-निमंत्रण, उपजाति में अनाहत, सरसी में मद्र-राज, हरिगीतिका में केशों की कथा शीर्षक लिखा गया है. शान्ति- सन्देश के लिए छप्पय, कुन्ती और कर्ण के लिए वीर छंद, युयुत्सु के लिए पादाकुलक, समर-सज्जा के लिए दोहा छंद का, अर्जुन का मोह के लिए गोपी और श्रृंगार छंद, युद्ध के लिए घनाक्षरी उत्तर - चरणार्द्ध, हत्या के लिए चपपैया, विलाप के लिए रोला छंद, कुरुक्षेत्र के लिए हरिगीतिका छंद का प्रयोग हुआ है, इस काव्य का अंत शीर्षक सार छंद में और " स्वर्गारोहण " शीर्षक वीर का गुरु चरणांत रुप में लिखा गया है.

" अतिथि और आतिथेय " चौपाई में लिखा गया है. यह छंद पन्द्रह मात्रा का है. इसके अंत में ऽ। रहता है-

दीखा हफर लज्जा से लाल,
झुका भार सा पाकर भाल,
सान्ध्य प्रकृति प्रतिकूल के संग,
पलट शून्य में जैसे रंग । " [1]

" हिडिम्बा " घनाक्षरी- उत्तर- चरणार्द्ध में लिखी गई रचना है. इस छंद में 8,7 वर्ण पर यति पड़ती है. इसके अंत में ऽ ऽ ऽ या ।।ऽ या ऽ।ऽ रहता है. इस छंद का कवि ने बहुत प्रयोग किया है.

" नीर निम्न गामी हुआ, इसमें क्या भूल है ?
खींचना जिसे है इसे, तल में ही मूल है ।
उतरी थकान जो चढ़ी थी उन्हें वन में,
प्राप्त हुए व्याप्त नये प्राण- से पवन में । " [2]

" युद्ध " घनाक्षरी- उत्तर-चरणार्द्ध में लिखा गया है. " अतुकान्त कविता एवं मुक्त छंद में अनुप्रास के प्रयोग से व्यंजना में बड़ा बल आ जाता है. नीचे के

---

1. जय भारत, पृ. 22।
2. हिडिम्बा, पृ. ।।

190

उदाहरण में कारक की द्वितीया एवं प्रथमा विभक्ति की आवृत्ति ने भाव और भाषा को कितना सबल बना दिया है -

" किंवा अपने से ही मनुष्य क्यों, कहूँ स्वयं
अपने ही भाई-बन्धुओं को बड़े- बूढ़ों को ।
मामा- भानजों को, गुरु- शिष्यों को, सखाओं को,
साले-बहनोइयों को, काकाओं- भतीजों को,
अपने ही हाथों मार डाला, कहा लोगों ने ।
और अपनी ही बड़ी छोटी कुलदेवियाँ
काकियाँ-बुआएँ, स्नेहमूर्ति मामी-मौसियाँ,
भानजी- भतीजियाँ, बहिन-बहू- बेटियाँ
सलहज- सालियाँ, सहज सखी भाभियाँ
विधवा बना दीं आत्मघातिकों ने सहसा । " [1]

सारांश यह है कि गुप्तजी का छन्द-विधान स्तुत्य और सफल है. छन्दों पर उनका अद्भुत प्रभुत्व है - किन्तु सफल शिल्पी के समान नहीं, शक्तिशाली प्रयोक्ता की तरह . " [2]

---

1. युद्ध, पृ. 51.
2. मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, उमाकान्त, पृ. 335.